संपादन:
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सह संपादक:
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकन:
विप्लव शशि

सहयोग:
जया विवेक
बृजेश सिंह
रामभरोस यादव
महेश बसेड़िया
गजेन्द्र सिंह राठौर
आयशा पठान
जॉली जैन

शैक्षिक
संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक - 24-25, जुलाई-अक्टूबर 1998

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 50 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: कीट अपने जीवनकाल में चार अवस्थाओं से गुज़रते हैं – अंडा, लार्वा, प्यूपा या शंखी अवस्था और वयस्क। फोटो में मोनार्क तितली की शंखी यानी प्यूपा एक पेड़ की टहनी से लटका दिख रहा है। यह प्यूपा अवस्था कीटों के कायांतरण की विभिन्न अवस्थाओं में अंडे और लार्वा के बाद आती है। इस प्यूपा अवस्था के बाद जो जीव बाहर निकलेगा वो एक पूरी तितली होगी, अपने पंखों को झटकारकर उड़ान भरती हुई। कायांतरण के बारे में और अधिक जानकारी पृष्ठ 38 पर।
पिछला आवरण: प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन। इन्हें हाल ही में अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार मिला है। अमर्त्य सेन के काम के बारे में और अधिक जानकारी पृष्ठ 15 पर।
इस अंक में विभिन्न किताबों से लिए गए चित्र: *बायोलॉजिकल साइंसेज़* लेखक: विलियम टी. कीटन, जेम्स एल. गूल्ड प्रकाशक: डब्लू. डब्लू. नॉर्टन एंड कंपनी; *फिज़िकल जिओलॉजी* लेखक: शेल्डन जुडसन, मार्विन ई. कॉफमैन, एल. डॉन लीट प्रकाशक: प्रेंटिस हाल इन्क.; *होम्स प्रिंसिपल्स ऑफ फिज़िकल जियोलॉजी* प्रकाशक: चैपमेन एंड हॉल; *फ्रंटलाइन (नवंबर 1998); साइंटिफिक अमेरिकन (जनवरी 1972)*

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

नया सदस्यता शुल्क

संदर्भ का सदस्यता शुल्क बढ़कर 50 रुपए वार्षिक (6 अंकों के लिए) हो गया है। दो वर्ष और तीन वर्ष के लिए सदस्यता शुल्क क्रमशः 100 रुपए और 150 रुपए होगा।

सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर, ड्राफ्ट, चैक आदि से भेज सकते हैं। लेकिन –

1. अगर ड्राफ्ट – स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, सेंट्रल बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इंदौर, केनरा बैंक से बनवा रहें हो तो एकलव्य के नाम से **होशंगाबाद पर देय** बनवाएं। इनपर कोई अतिरिक्त सर्विस चार्ज नहीं लगता क्योंकि इनकी शाखाएं होशंगाबाद में हैं।

   अगर किसी भी अन्य बैंक – जैसे इलाहाबाद बैंक, यूनियन बैंक आदि से बनवा रहें हों तो एकलव्य के नाम से, लेकिन **भोपाल पर देय बनवाएं**। क्योंकि होशंगाबाद में इनकी शाखा नहीं है इसलिए सर्विस चार्ज के रूप में 25 रुपए कट जाते हैं। अगर किसी ने 50 रुपए का ड्राफ्ट भेजा है तो उसमें से हम तक सिर्फ 25 रुपए ही पहुंच पाते हैं।

2. वैसे **सबसे बेहतर तरीका मनीऑर्डर है**। इसमें न तो बैंक में समय खपाने की ज़रूरत है और न ही सर्विस चार्ज की दिक्कत। परन्तु मनीऑर्डर के संदेश वाले हिस्से में अपना स्पष्ट पता ज़रूर लिखें।

3. आखिर में, विशेष ध्यान रखें कि ड्राफ्ट **एकलव्य** के नाम से बना हो, संदर्भ के नाम पर नहीं।

सदस्यता शुल्क इस पते पर भेजें।

संदर्भ
द्वारा एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद 461 001

संदर्भ
द्वारा एकलव्य
ई-1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल 462 016

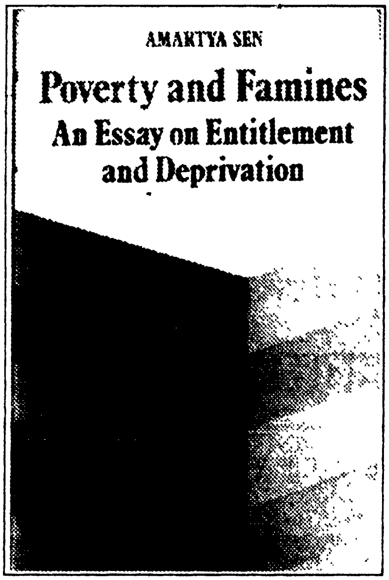

पात्रता और अभाव. 15

इस साल का अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार मिला है **अमर्त्य सेन** को। पिछले तीन से भी अधिक दशकों से वे अकाल और गरीबी के अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने अपनी शोध में पाया है कि अकाल के संदर्भ में केवल खाद्यान्न उत्पादन में कमी की बात बेमानी है। बल्कि अकाल तो वहां भी पड़ सकते हैं जहां खाद्यान्न की उपलब्धता पर्याप्त हो। दरअसल अकाल की वजह कुछ और ही होती है। उन्हीं की एक प्रसिद्ध पुस्तक 'पॉवर्टी एंड फेमिन्स' का एक अध्याय जिसमें उन्होंने अकाल से जुड़े पहलुओं को उजागर किया है।

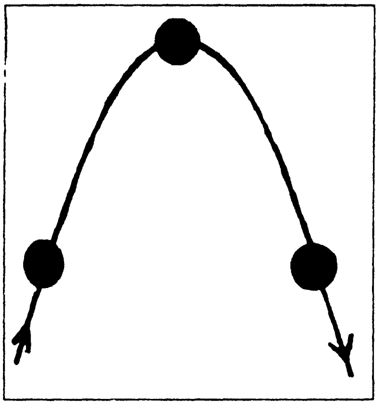

क्या हमारे विश्वास न्यूटन को न मानें . . 28

एक गेंद ऊपर की ओर फेंकी गई। चित्र में उसकी तीन अलग-अलग स्थितियां दिखाई गई हैं। गेंद की हर स्थिति पर तीर के निशान से दिखाओ की उस पर वहां जो बल लग रहा है उसकी दिशा क्या है? आपके पास शायद जवाब हो इस सवाल का। कोशिश तो कीजिए और देखिए इस सर्वे आधारित रिपोर्ट को जो ऐसे सवालों को लेकर हमारी समझ के बारे में कुछ बताती है।

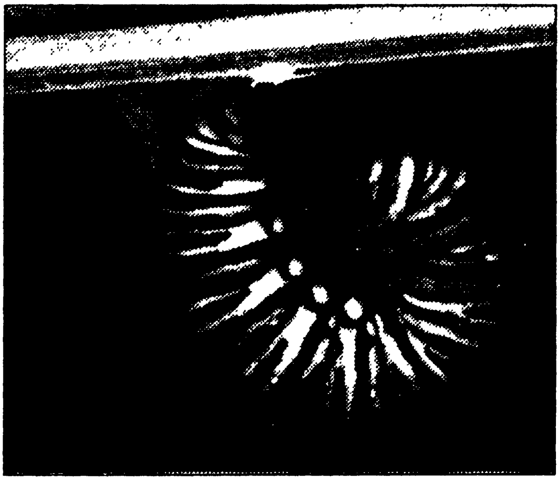

कायांतरण 38

काया बदलते कीट – अंडे से लार्वा निकला, कुछ समय बाद एक शंखी में बदल गया, और फिर बाहरी आवरण फटा और अपने पंखों को झाड़ती एक तितली निकल आई। इस प्रक्रिया को कायांतरण कहते हैं। यकायक होने वाले इन परिवर्तनों के दौरान एक जीव पूरी तरह नष्ट हो जाता है और बनने वाला जीव उससे एकदम फर्क होता है।

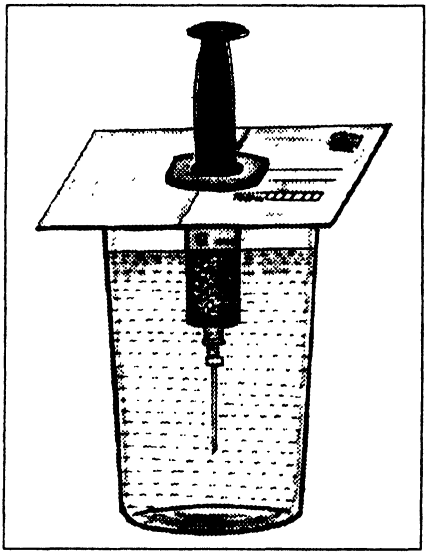

पानी में नाचता नमक . . . 69

. . . कभी धार नीचे चलती है तो कभी धार ऊपर . . .। वजह पर तो अभी नहीं जा रहे लेकिन कैसे करें इस प्रयोग को यह देख रहे हैं इस बार।

नारको यमत लोक में 111

अनारको के सपने भी बस . . अनोखे ही होते हैं। लेकिन इस बार तो हद ही हो गई जब वो इस दुनिया को छोड़कर एक और ही दुनिया में चली गई – लेकिन वहां जाकर भी भला क्या वो पनी शैतानियों से बाज आ सकती है। इस बार की कहानी।

इस अंक में

आपने लिखा. 4

चंद्रमा - 1 11
अरविंद गुप्ते

ज़रा सिर तो खुजलाइए. . . . 14

पात्रता और अभाव. 15
अमर्त्य सेन

क्या हमारे विश्वास न्यूटन को न मानें 28
अनीता रामपाल

कायांतरण. . . . 38
सुशील जोशी

सिकाडा किलर्स. 50
किशोर पंवार

आर्यभटीय. 53
गुणाकर मुळे

पानी में नाचता नमक का घोल. 69
ए. दास

दो संख्याएं, एक रेखा के ऊपर एक. . . 74
छाया दुबे

धरती का कांपना. 81
माधव केलकर

ऊर्जा ही है सब कुछ. 93
एस. बी. वेलणकर

जादुई तालाब - एक और हल 101
प्रमोद मैथिल

बच्चों का मौलिक लेखन. 104
कमलेश चंद्र जोशी

अनारको यमत लोक में (कहानी). . 111
सत्यु

बच्चे कैसे सीखते हैं. . . . 125
जॉन होल्ट

केंचुए में प्रजनन. 135
स्निग्धा मित्रा

इंडेक्स. 139

संदर्भ के सभी अंक पठनीय और ज्ञानवर्धक हैं। इसकी महत्ता को केवल महसूस किया जा सकता है। आपसे एक निवेदन है कि इसमें एक कहानी अवश्य रखिए। उदाहरणार्थ पिछले अंक में कहानी 'घर' उत्कृष्ट रही। पत्रिका को घर के सभी सदस्य बहुत ही आनंद के साथ पढ़ते हैं। लेकिन पत्रिका प्राप्त देर से होती है।

एक और बात कि विज्ञान संबंधी जो भी लेख आप देते हैं वो रुचिकर तो होते हैं लेकिन कई बार हिंदी क्लिष्ट होने की वजह से रुकावट आती है। आपसे गुज़ारिश है कि इन लेखों को छापते समय इनके हिंदी शब्दों की अंग्रेज़ी भी कोष्ठक में देने की कृपा करें, ताकि लेख का पूरा आनंद और लाभ उठाया जा सके। पत्रिका की पेज संख्या बढ़ाई जाए तो और भी अच्छा रहेगा।

रमेश शर्मा
केशवपुरम, दिल्ली

मैं संदर्भ का नियमित पाठक हूं। मैं कक्षा 12 का विद्यार्थी हूं और अच्छी विज्ञान पत्रिकाएं पढ़ना चाहता हूं। संदर्भ में प्रकाशित लेख स्तरीय होते हैं।

संदर्भ में स्तर के लेख प्रकाशित करने के आपकी टीम के प्रयासों की मैं प्रशंसा करता हूं। समझने के लिहाज़ से ये काफी सरल ढंग से पेश किए जाते हैं। साथ ही खुद कुछ खोजने के प्रति पाठक की जिज्ञासा को बढ़ाने में कामयाब रहते हैं। इसी तरह बच्चों द्वारा उठाए गए रोज़मर्रा के सवालों के जवाब देने के प्रयास भी मुझे काफी अच्छे लगे। मेरी एक सलाह है – उन सभी के लिए जो संदर्भ के लिए लिखते हैं और संपादित करते हैं। कृपया वैज्ञानिक शब्दावली के साथ में उनके अंग्रेज़ी शब्द भी दिया करें। इससे ऐसे लोगों को काफी मदद मिलेगी जिन्होंने इन शब्दों को कभी हिंदी में नहीं पढ़ा है।

मैं समझता हूं कि हिंदी में ऐसे स्तरीय लेखों की कितनी कमी है और जो शायद संदर्भ के देरी से प्रकाशित होने का एक कारण भी है।

अभिनव अग्रवाल
नई दिल्ली

संदर्भ का नया अंक पढ़ा। नीरज जैन द्वारा लिखित 'सिकाडा का मधुर संगीत' बहुत अच्छा लगा। 'चंद्रमा - 1' नाम पढ़कर ही समझ में आ गया कि यह लेख किश्तों में आएगा। संदर्भ में लेखों की शुरुआत अक्सर काफी रोचक ढंग से होती है और पाठक को पूरा लेख पढ़ने की

दिशा में खींच लेती है। 'चंद्रमा' भी इस कोशिश मे कामयाब रहा। चंद्रमा को अपने परिवार का सदस्य मानकर इसके बारे में और जानने की उत्सुकता के साथ पन्ना पलटा तो प्रश्नों के जाल में उलझ कर रह गई। लगा उसके बाद लेख सतत् रहेगा पर. . . ऐसा लगा मानों केले का छिलका उतारा, मन बनाया कि केला खाना है और किसी ने रोक दिया कि बस इस बार छिलका उतारो केला अगले सीज़न में खाना।

मुकेश मालवीय का 'बहुस्तरीय शिक्षण, स्थितियों से. . .' भी पढ़ा। परंतु क्या इस ढांचे 'कक्षाएं पांच और शिक्षक एक' को बदलने का कोई तरीका नहीं है, या इस तरह के लेख इस व्यवस्था में बदलाव की दिशा में एक प्रयास हैं?

छाया दुबे
भोपाल

संयुक्तांक मिला। यह अंक बहुत सुंदर है। नीरज जैन का लेख 'सिकाडा का मधुर संगीत' बहुत रोचक था। इससे हमें एक नए जीव के बारे में जानकारी मिली। वेलणकरजी का लेख 'आवेश चुबंक और कूलंब का बल' भी बहुत अच्छा लगा। 'हिरोशिमा से पोखरण' में *तासुहिको ताकेता एवं सदाको* के बारे मे पढ़कर दुख हुआ। सचमुच अब परमाण्विक शस्त्रों के विस्तार को रोका जाना चाहिए। 'मॉनसून एक अबूझ पहेली', 'तारों का वर्णक्रम और मेघनाथ साहा' तथा 'समुद्र सतह मे उतार चढ़ाव' जैसे विज्ञान से संबंधित लेख बहुत सुंदर और जानकारी पूर्ण थे। हर अंक में वैज्ञानिकों के बारे में जानकारी पाकर हमें कई नई बातों का ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार अलग-अलग वैज्ञानिकों और उनके द्वारा किए गए कार्यो को हर अंक में प्रकाशित करें।

विनोद कुमार सोनी, कक्षा नवमीं
गढ़ाकोटा, सागर, म. प्र.

संदर्भ का संयुक्तांक मिला। मुकेश मालवीय की रचना 'बहुस्तरीय शिक्षण : स्थितियों से उपजा एक प्रयोग', एक रोचक लेख है। मुझे शैक्षिक संदर्भ की कुछ रचनाएं जटिल प्रतीत होती हैं। उनका प्रस्तुतिकरण, भाषा शैली क्लिष्ट होने के कारण सामान्य पाठक को वे जटिल प्रतीत होती हैं।

हालांकि मुझे संदर्भ अतिप्रिय है और बड़ी बेसब्री से इसका इंतज़ार करता हूं। तथा मेरी ख्वाहिश है कि विज्ञान की नई महत्वपूर्ण खोज व

इससे संबंधित समसामयिक भी प्रकाशित हों तो पत्रिका अधिक पठनीय होगी।

अभय प्रताप सिंह
प्रोफेसर कॉलोनी, भोपाल

शैक्षिक संदर्भ मेरी सबसे प्रिय पत्रिका है। परन्तु इसका दो माह का लंबा प्रकाशन काल खलता है। कृपया इसे मासिक बनाने का प्रयत्न करें। अंक 22-23 में दी गई सिकाडा के जीवन की रोचक जानकारी अच्छी लगी। 'हिरोशिमा से पोखरण तक' लेख दिल को छू गया। परमाणु अस्त्र की विनाशकारी गाथा को सुन दिल दहल गया कि कहीं यही कहानी भारत व पाकिस्तान द्वारा दोहराई तो नहीं जाएगी, आशा करता हूं नहीं।

आशिष पेटारे
इंदौर

संदर्भ में शिक्षा का सैद्धांतिक पक्ष ही अधिक विवेचित होता है। इसमें कहीं-कहीं ऐसी कविता या कहानी भी दी जा सकती है जो कहीं शिक्षा के सिद्धांतों से जुड़ती हो। तथा कहानी या कविता को शिक्षा के क्रम में बच्चों के सामने कैसे प्रस्तुत किया जाए इस पर भी विचारपूर्ण आलेख या शैक्षिक अनुभवों पर आधारित लेख भी आना चाहिए। बाल नाटकों पर भी ऐसी सामग्री दी जा सकती है।

श्रीप्रसाद
वाराणसी, उ. प्र.

सदभ नियमित रूप से मिल रही है। इससे शिक्षा से जुड़े नए एवं रोचक अनुभव तो सीखने को मिलते ही हैं साथ-साथ कुछ स्वयं करके देखने की भावना भी प्रबल होती है। अंक 22-23 में आर्यभट के बारे में विस्तृत जानकारी गुणाकर मुळे द्वारा उनको एक सच्ची श्रद्धांजलि है। इसी तरह 'बच्चे कैसे सीखते हैं', 'चंद्रमा-1', 'जादुई तालाब की पहेली' भी अच्छे लगे।

बाल किशन (अध्यापक)
हरियाणा विज्ञान मंच, भिवानी

संदर्भ के 22-23वें अंक में माधव केलकर का लेख 'समुद्र सतह में उतार चढ़ाव' पढ़ा। वैज्ञानिक तथ्यों से परिपूर्ण यह लेख अति सराहनीय एवं ज्ञानवर्धक है। सूक्ष्म जीव विशेषकर *फोरामिनीफेरा* पुरा-इकोलॉजी को दर्शाने में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। *फोरामिनीफेरा* का वितरण जलवायु, तापमान तथा समुद्र की गहराई पर निर्भर करता है। लेखक ने सटीक

उदाहरण देकर हिमयुग तथा तापमान बढ़ने पर समुद्र सतह के उतार-चढ़ाव को दर्शाया है।

एक और जानकारी – अंटार्कटिका हिम चादर के नीचे ज्वालामुखी विस्फोट शुरू होने की जानकारी सन् 1993 में मिली। यूनेस्को के सहयोग से प्रकाशित एक पत्रिका के मार्च 1998 में दिए गए अनुमान के अनुसार यदि 9000 फीट मोटी पश्चिम अंटार्कटिक हिम चादर समुद्र में सरक जाएगी तो पृथ्वी के हर भाग में समुद्र की सतह 65 फीट बढ़ जाएगी। किन्तु अन्य वैज्ञानिकों के अनुसार इन हिम चादरों के नीचे ज्वालामुखी विस्फोटों से अभी तक कोई विशेष नुकसान नहीं हुआ है। फिलहाल समुद्र की सतह में चढ़ाव की संभावना नहीं है।

डॉ. विजय खन्ना, भूविज्ञान विभाग
शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर

संदर्भ का संयुक्तांक मिला। इस बार की संदर्भ ने तो तृप्त कर दिया। उम्मीद करती हूं कि ये हमें जल्द ही समय पर मिलेगी।

कवर पृष्ठ बहुत ही आकर्षक लगा। इसे देखकर लेख पढ़ने की चाहत जागी, पढ़ने पर लगा कि काश मैं भी सिकाडा व उसके मधुर संगीत को प्रत्यक्ष देख और सुन पाती।

हिरोशिमा की आपबीती 'तासुहिको ताकेता' की जुबानी पढ़ते-पढ़ते रोंगटे खड़े हो गए। ऐसा महसूस हुआ कि मैं भी चारों तरफ हो रहे विस्फोटों के बीच खड़ी हूं। सच में इस तरह की घटनाएं मानवता को दहला देने वाली होती हैं। संदर्भ में कहानी जैसे रोचक स्तंभ को स्थायी बनाया जाना चाहिए। 'घर पर' दिल को छू गई। पढ़ते-पढ़ते आदतन नशा करने वाले पिता के मन की उथल पुथल को महसूस किया।

समुद्री घोड़े का चित्र देखकर इसके वास्तविक रुप का अंदाज़ा लगा। वरना अब तक रेखाचित्रों से बड़ी उलझन वाली स्थिति बनती थी।

इस बार शिक्षा से संबंधित लेख अधिक मिले जो कि रुचिप्रद थे।

'बच्चे कैसे सीखते हैं' को पढ़कर पूरी पुस्तक पढ़ने का मन बना लिया।

चेतना खरे
उज्जैन

नया अंक मिला। आकर्षक पृष्ठ सज्जा, उपयुक्त आकार, विज्ञान का अन्तर्जगत एवं प्रकृति की अबूझ रहस्यता को सरल, हृदयगम, रोचक शैली में प्रस्तुत कर सकने की क्षमता के लिए हार्दिक बधाई। शिक्षण कार्य,

अनुभवों को अभिव्यक्ति का पृष्ठ मिले इससे अच्छा क्या हो सकता है।

गोपाल सिंह चौहान
नीमच सिटी, नीमच, म.प्र.

22-23 वां अंक मिला। मुखपृष्ठ अत्यंत आकर्षक लगा। 'सिकाडा का मधुर संगीत' पढ़कर अच्छा लगा। नई जानकारी मिली। आपकी पत्रिका के लेख अत्यंत उच्च स्तरीय भी होते हैं एवं कुछ एकदम सरल भी, परंतु एक 9 वीं कक्षा के विद्यार्थी के लिए ज़रा मुश्किल होती है। दो-चार अंकों में ही सही एकाध सरल लेख छाप दिया करें।

'हिरोशिमा से पोखरण तक' अत्यंत अच्छा लगा। परंतु सबसे अच्छी लगी कहानी 'घर पर'। अंत की पंक्ति का कहानी से संबंध अभी तक समझ में नहीं आया। कोशिश जारी है। आशा है कि 'संदर्भ' के अगले अंक जल्दी मिलेंगे तथा जल्दी ही संदर्भ 'मासिक' भी हो जाएगी।

नेहा पटेल
इंदौर, म. प्र.

पिछले दिनों मेरा अपनी चचेरी बहन के यहां शुजालपुर जाना हुआ। वहां आपकी यह ज्ञानवर्धक पुस्तिका पढ़ी। इससे मेरा काफी ज्ञान बढ़ा व मुझे लगा यही उपयुक्त पत्रिका है जो मेरी जिज्ञासाओं के उत्तर देने में सक्षम है। पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की शुभकामनाएं।

कुणाल ढोमणे
सारणी, ज़िला बैतूल, म.प्र.

इस बार का मार्च-जून का संयुक्तांक पढ़ा। पढ़कर तबियत मस्त हो गई। ज़्यों द्रेज़ द्वारा प्रस्तुत 'हिरोशिमा से पोखरण तक' लेख पढ़कर बहुत अच्छा लगा। आशा करता हूं कि संदर्भ भविष्य में ऐसे और लेख प्रस्तुत करेगी।

पीयूष वैष्णव
नरसिंहगढ़, ज़िला राजगढ़, म.प्र.

सयुक्तांक में छपे 'हिरोशिमा से पोखरण तक' ने दिल को दहला दिया। मेरे ख्याल से तो इस लेख को जन-जन तक पहुंचाना चाहिए। विशेषकर उन देशों में जहां परमाणु ऊर्जा का उपयोग जीवनोपयोगी कार्यों में न कर विश्व के सर्वनाश के लिए किया जा रहा है।

एक बात समझ नहीं आई कि इस लेख को भारतीय पोखरण परीक्षण के बाद ही प्रकाशित किया, क्या भारत ने जो परीक्षण किया है उसे गलत साबित करना चाह रहे हैं? भारत तो शांतिप्रिय देश है वह किसी का बुरा नहीं चाहता।

कविता शर्मा
हरदा, म. प्र.

यशपाल, तगाड़ी और बैलगाड़ी

संदर्भ 18 में प्रकाशित प्रो. यशपाल के भाषण पर आधारित लेख 'स्कूल के सवाल ज़िन्दगी के सवालों से फर्क क्यों?' जब से पढ़ा है तब से मन उद्वेलित है। हालांकि बहुत देर से इस पर अपनी प्रतिक्रिया भेज रहा हूं लेकिन यह जानते हुए भी अपने आप को रोक नहीं पा रहा हूं।

यह लेख इतना महत्वपूर्ण विचारोत्तेजक और सामयिक है कि न सिर्फ इस पर केवल प्रतिक्रिया होनी चाहिए, बल्कि मुझे लगता है कि इस पर विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और स्कूलों तथा वैज्ञानिक संस्थानों में एक बहस होनी चाहिए। आखिर कब तक हम लोग कुंए के मेंढक की तरह अपनी-अपनी दुनिया में सिमटे रहेंगे। ज़िन्दगी के सवालों के जवाब जब तक अलग-अलग क्षेत्र के लोग मिल बैठ कर, खुले दिलो दिमाग से नहीं विचारेंगे तब तक हमारा देश, दुनिया की सबसे बड़ी 'वैज्ञानिक फौज' होते हुए भी किसी नए महान जनोपयोगी आविष्कार को मोहताज रहेगा।

इसी लेख में गांवों में हुए नवाचारों में 'मरूता' और 'जुगाड़' के बारे में पढ़ा। एक वस्तु से किस तरह ज़्यादा से ज़्यादा काम लिया जाए, उसका विभिन्न तरीकों से इस्तेमाल हो – भारतीय परिवेश में यह उसका बेमिसाल उदाहरण है। ऐसे और कई नवाचार हमारे आसपास बिखरे पड़े हैं जिन पर तथाकथित बुद्धिजीवियों, वैज्ञानिकों और नीतिनिर्धारकों का ध्यान पता नहीं क्यों नहीं जाता। सेंधवा में, जहां मैं पिछले सात सालों से रह रहा हूं, मैंने भी उपलब्ध संसाधनों का एक बहुत ही बढ़िया उपयोग देखा है। आप जानते ही हैं कि ट्रक और बसों के पुराने टायर को ठिकाने लगाना कितना मुश्किल काम है। जलाने पर ये प्रदूषण फैलाते हैं और इनसे कई केन्सरकारी पदार्थ निकलते हैं, ढेर सारा धुंआ निकलता है सो अलग। यहां के जूते-चप्पल बनाने वालों ने इसका एक

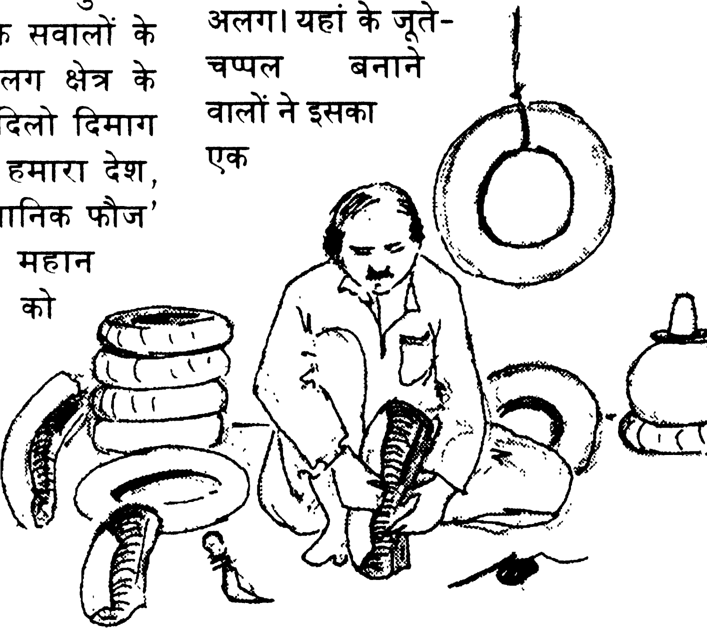

चित्र: विप्लव शशि

सुन्दर उपयोग ढूंढ निकाला है – वह है इससे सुन्दर, मजबूत, जंग न लगने वाली तगाड़ी बनाना। ये इतनी सफाई से बनाई जाती है कि तारीफ किए बिना नहीं रहा जा सकता। पुरानी बेकार वस्तु का इससे बढ़िया और क्या उपयोग हो सकता है। टायर से तगाड़ी विदेशों में नहीं बनायी जा सकती, वह तो भारत में ही संभव है।

इन्डीजीनस तकनॉलॉजी का एक और उदाहरण देखिए। क्या आपने बैलगाड़ी में कभी ब्रेक देखे हैं? मैंने देखे हैं।

हमारे यहां महाराष्ट्र से जिस रास्ते बैलगाड़ी में कपास लाया जाता है, बीच में एक बड़ा बीजासनघाट पड़ता है। चढ़ाई के दौरान गाड़ी के पीछे लुढ़कने का डर हमेशा बना रहता है।

इस मुश्किल से निजात पाने का सीधा-सरल उपाय देखिए जो ये अपढ़ ग्रामीण अपनाते हैं। गाड़ी के पहिए के पीछे उसके एक्सल के दोनों सिरों पर रस्सी से एक डेढ़ फीट लम्बा लकड़ी का मोटा टुकड़ा लटका दिया जाता है जो गाड़ी के आगे चलने पर तो पहिए के साथ सड़क पर रगड़ता हुआ चलता रहता है, परन्तु गाड़ी जैसे ही पीछे की ओर आने लगती है वह अपने भार के कारण रुककर ओट बन जाता है। और इस तरह गाड़ी लुढ़कने से बच जाती है। इसे कहते हैं – उपयुक्त टेकनॉलॉजी। जो यह बताती है कि स्थानीय समस्याओं के इलाज भी स्थानीय ही हो सकते हैं। विदेशी तकनीक से देसी समस्याओं के हल नहीं ढूंढे जा सकते। प्रो. यशपाल को और आप लोगों को इतना अच्छा लेख संदर्भ में प्रकाशित करने हेतु धन्यवाद। उम्मीद है संदर्भ इसी तरह से विज्ञान और समाज के रिश्तों पर रोशनी डालती रहेगी।

किशोर पंवार
वनस्पति शास्त्र विभाग
सेंधवा, म. प्र.

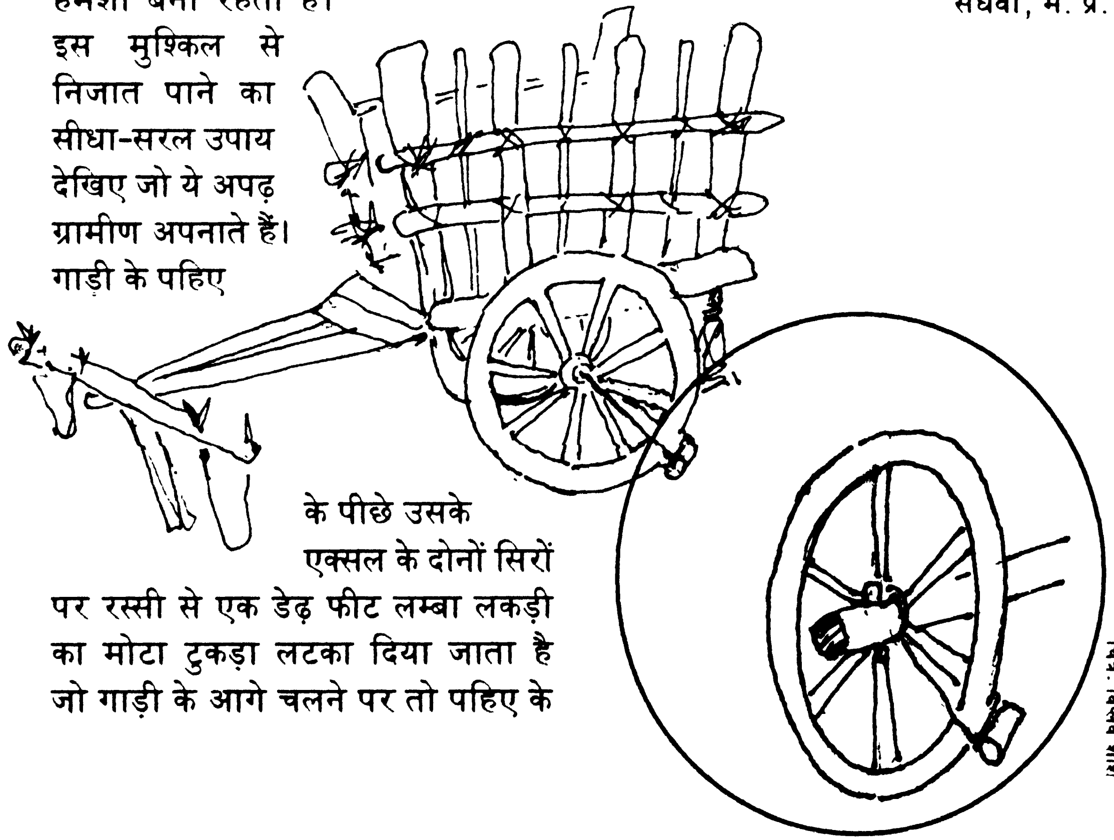

चित्र: विप्लव शशि

परखिए अपनी नज़र को

चन्द्रमा -1

संदर्भ के पिछले अंक में अरविंद गुप्ते के इसी लेख के ज़रिए चन्द्रमा से संबंधित कुछ सवाल पूछे गए थे। हमारा आकलन था कि चूंकि चांद आकाश में एक प्रभावशाली पिंड है और लोगों की ज़िंदगी से इतना जुड़ा हुआ है, इन प्रश्नों के बारे में काफी लोग लिखेंगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसलिए एक और प्रयास कर रहे हैं, फिर से वही प्रश्न दोहरा कर – यह मानते हुए कि अंत की तरफ होने की वजह से शायद पिछली बार इस लेख पर आपकी नज़र ही न पड़ी हो।

सही जवाब देने वालों को टेलिस्कोप निर्माण कार्यशाला में भाग लेने का निमंत्रण होगा – उनकी समस्त व्यवस्था 'संदर्भ' द्वारा की जाएगी। अन्य रुचिकर व तकरीबन सही जवाबों के लिए आकाश दर्शन से संबधित पुस्तकें उपलब्ध करवाई जाएंगी। आपके सही जवाब हमें 1 जनवरी तक मिल जाने चाहिए।

सवाल:

1. अमावस्या के दिन चंद्रमा बिलकुल दिखाई नहीं देता है। वह कहां चला ज़ाता है?
2. चित्र–1 में एक गलती है। बताइए चित्रकार ने क्या गलती की है।

चित्र:1

3. चित्र–2 में क्या गलती है?

चित्र:2

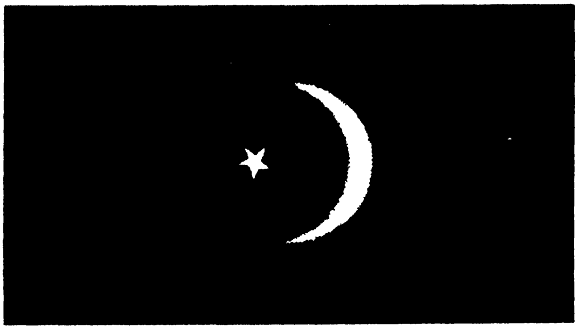

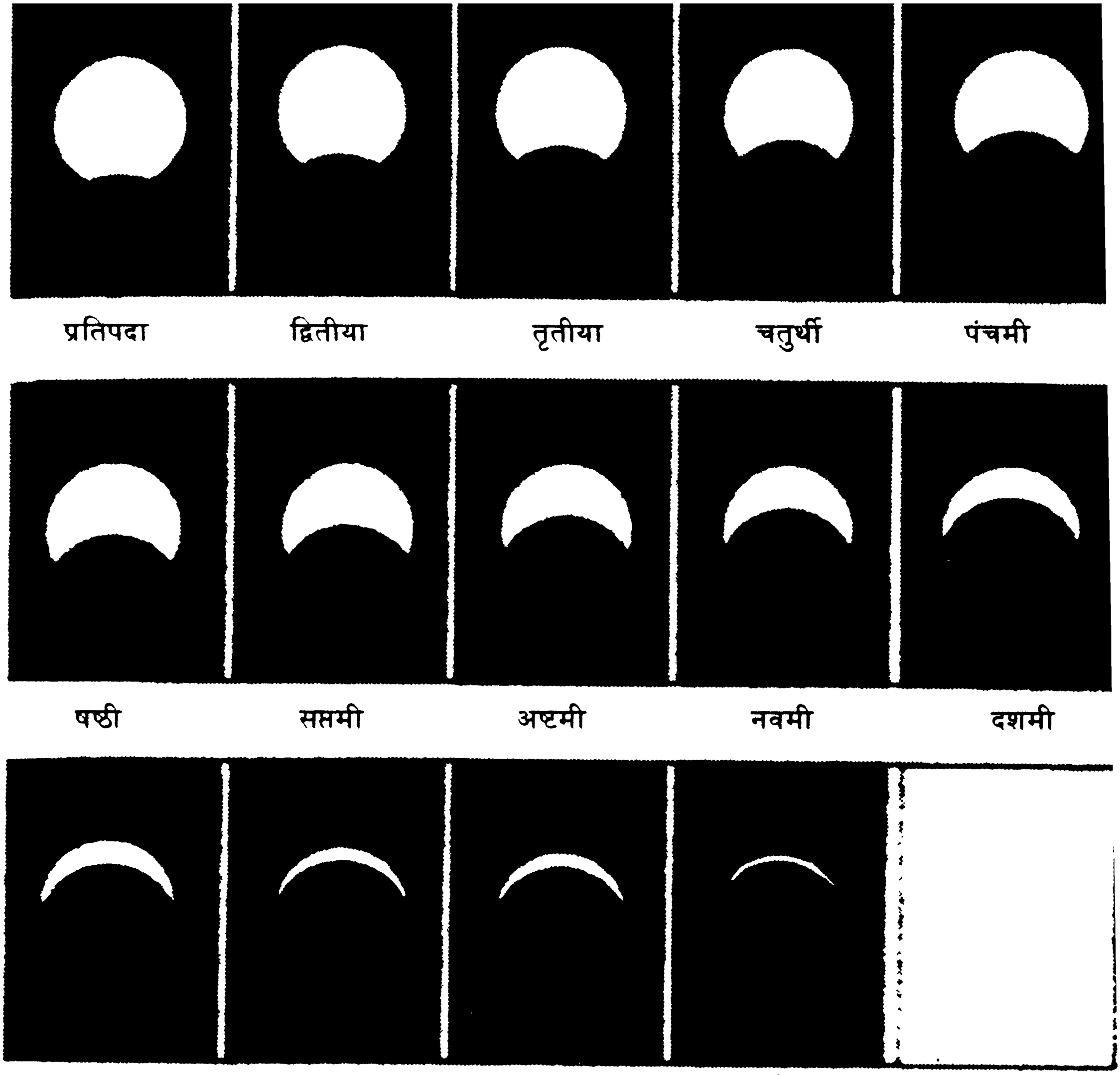

कृष्ण पक्ष *चित्र:3*

---

4. चित्र-3 एक पाठ्यपुस्तक से लिया गया है। इसमें कई त्रुटियां हैं। इन त्रुटियों को पहचानिए।
5. भूमध्य रेखा पर कभी-कभी चंद्रमा की कला ऐसी दिखाई पड़ती है जैसी चित्र-4 में दिखाई गई है।
   – यह भारत में कैसी दिखाई देती है? क्यों?
   – ध्रुवों पर यह कैसी दिखाई देगी? क्यों?

अरविंद गुप्ते: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध; इंदौर में रहते हैं। पूर्व में वे प्राणीशास्त्र के प्राध्यापक रह चुके हैं।

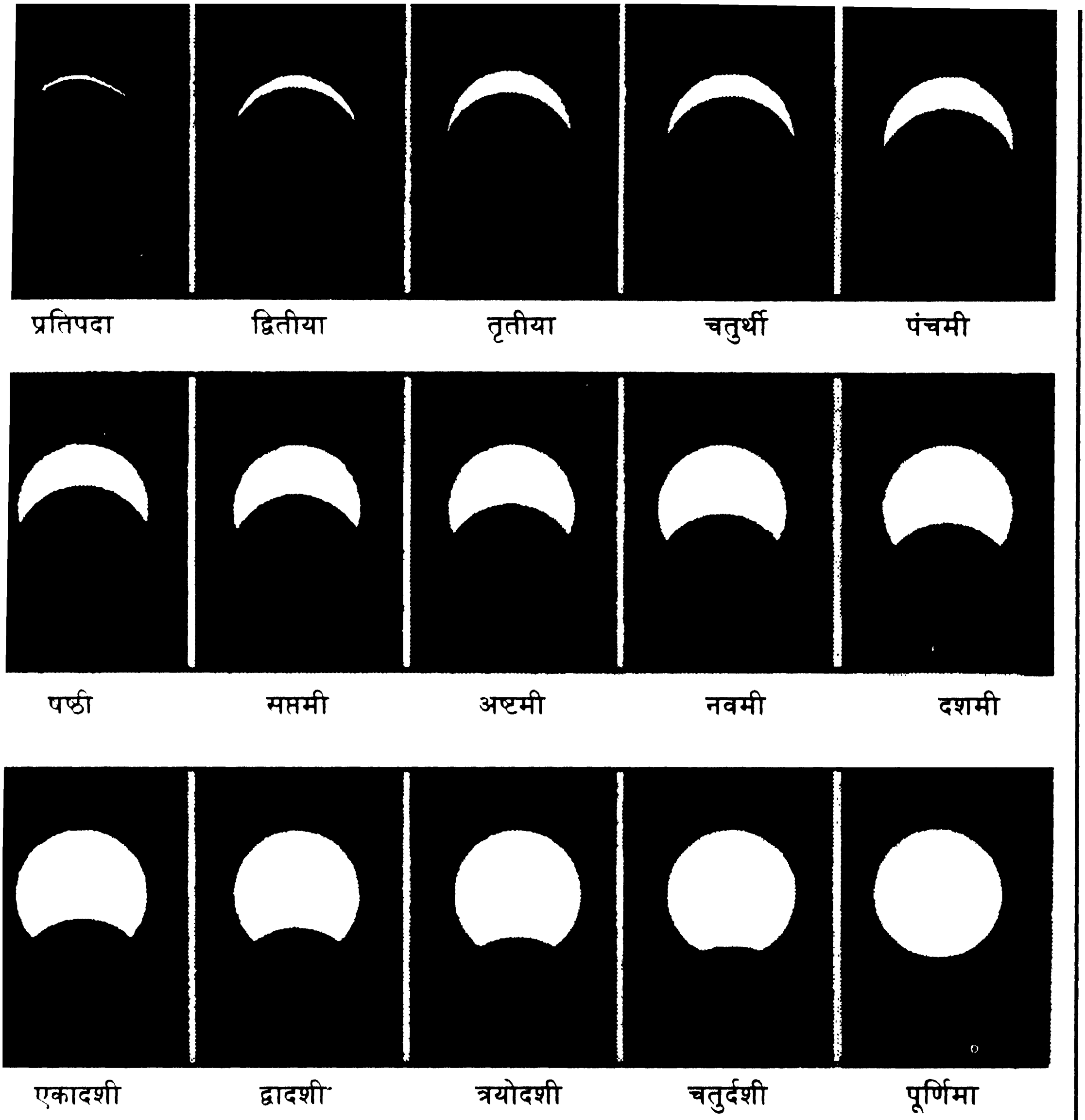
प्रतिपदा
द्वितीया
तृतीया
चतुर्थी
पंचमी
षष्ठी
सप्तमी
अष्टमी
नवमी
दशमी
एकादशी
द्वादशी
त्रयोदशी
चतुर्दशी
पूर्णिमा

शुक्ल पक्ष

चित्र:1

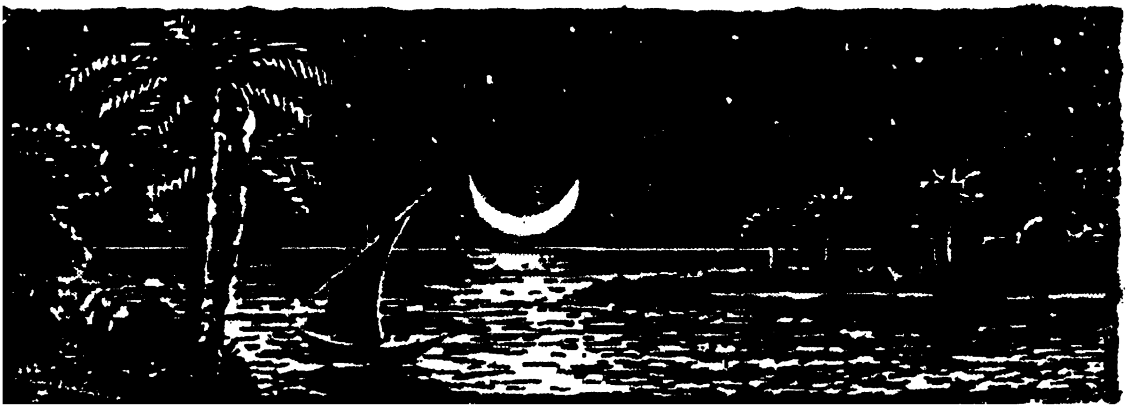

ज़रा सिर तो खुजलाइए

घड़ी *लेकर तैयार हो जाइए क्योंकि शुरुआत में आपको फुर्ती दिखानी होगी। सबसे पहले, सवाल पढ़ते ही दस सेकंड के भीतर सिर्फ अंदाज़ लगाकर उसका जवाब देने की कोशिश कीजिए। फिर उठाइए कागज़ पेंसिल और देखिए कि आपका अनुमान कितना सही था . . .। जैसा बताया है ठीक वैसा ही करेंगे तो बाद में आपको भी मज़ा आएगा। फिर से, केवल दस सेकंड, और केवल अनुमान।*

> सवालः मान लीजिए कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर जिस कक्षा में घूमती है वह एकदम गोलाकार है और उसकी त्रिज्या एक करोड़ बावन लाख किलोमीटर है। अगर हम इस कक्षा की त्रिज्या एक मीटर बढ़ा दें तो उसकी परिधि में कितनी वृद्धि होगी?

न. . न. .न. . पहले तो आपको दस सेकंड के भीतर जवाब देने की कोशिश करनी है। पेंसिल कागज़ तो बाद में।

हमें आपके दोनों जवाब का इंतज़ार रहेगा . . .। साथ ही हल करने का तरीका भी ज़रूर लिखें। सवाल हल करने के दौरान हुए अन्य अनुभव भी।

जवाब इस पते पर भेजने हैं;

संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद – 461 001

पिछले अंक का जवाब पेज नंबर 73 पर

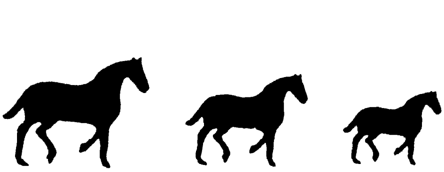

पात्रता और अभाव

सेन

अकाल खाद्यान्न की उपलब्धता में कमी से नहीं होता। अकाल वहां भी पड़ सकता है जहां प्रति व्यक्ति खाद्यान्न का उत्पादन संतुलित हो या अधिक हो। अकाल पड़ने के लिए कुछ और ही परिस्थितियां ज़िम्मेदार होती हैं।

1. भोजन और पात्रता:

इस किताब में हमने इस दृष्टिकोण पर सवाल उठाया है कि खाद्यान्न की उपलब्धता में कमी आने से अकाल होता है। हाल में जो महत्वपूर्ण अकाल पड़े हैं उनके अध्ययन से पता चला है कि अकाल वहां भी पनप सकता है जहां खाद्यान्न की उपलब्धता में कोई व्यापक कमी नहीं आई हो। उन मामलों में भी जहां अकाल और प्रति व्यक्ति उपलब्ध खाद्यान्न में कमी साथ-साथ हुई हो, वहां भी अन्य कारकों के होने पर ही अकाल पड़ता है। 'खाद्यान्न की उपलब्धता में कमी' वाला सिद्धांत भुखमरी के कारणों का सुराग इसलिए नहीं दे पाता है क्योंकि वह खाद्यान्न व लोगों के बीच के रिश्ते को छूता नहीं है। . . .

खाद्यान्न केन्द्रित नज़रिया भुखमरी के कारणों पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाल पाता है। मसलन वह यह नहीं समझा सकता है कि खाद्यान्न की कमी न होने के बावजूद भुखमरी क्यों होती है। वह यह भी नहीं समझा पाता कि – जब भुखमरी और खाद्यान्न की उपलब्धता में कमी एक साथ हो – क्यों समाज के कुछ ही समूह भूखे मरते हैं जबकि उसी समय कुछ अन्य समूहों के पास भोजन उपलब्ध रहता है। दरअसल व्यापक स्तर पर खाद्यान्न

उपलब्धता और भुखमरी का रिश्ता बहुत दूर का है। इसके विपरीत जब हम कुछ विशिष्ट समूहों की खाद्यान्न उपलब्धता की बात करते हैं तब हम भुखमरी की समस्या के और करीब आ पहुंचते हैं।

लेकिन फिर भी हम भुखमरी का सिर्फ वर्णन ही कर पाएंगे, उसके कारणों की खोजबीन नहीं कर पाएंगे। ज़ाहिर है कि अगर कुछ लोगों को भूखे रहना पड़ा तो इसका मतलब है कि उनके पास पर्याप्त भोजन नहीं था। लेकिन सवाल यह है – उनके पास पर्याप्त भोजन क्यों नहीं था? समाज का एक तबका उपलब्ध भोजन पर कैसे अधिकार जमा लेता है, जबकि दूसरा तबका भूखा रह जाता है? ये सवाल हमें पात्रता के मुद्दे पर ले जाते हैं जिसे समझने के लिए हमें विशिष्ट अर्थशास्त्रीय क्षेत्र से निकलकर सामाजिक, राजनैतिक और कानूनी पक्षों में जाना होगा।

भोजन, या कुछ भी, हासिल कर पाने की किसी की क्षमता – इस बात पर निर्भर करती है कि समाज में चीज़ों की मिल्कियत और इस्तेमाल के हक कैसे हैं – किसको किस-किस तरह की पात्रता* है।

यानी कि उसकी मिल्कियत में क्या है, लेनदेन करने की क्या संभावनाएं उसके पास उपलब्ध हैं, उसे क्या चीज़ें मुफ्त में मिलती हैं और क्या उससे लिया जाता है। उदाहरण के लिए एक नाई अपनी श्रम करने की क्षमता और बाल काटने के हुनर पर अपना अधिकार रखता है। लेकिन वह इन

* **पात्रता:** अमर्त्य सेन मानते हैं कि एक व्यक्ति को भोजन कैसे हासिल होगा यह मुख्यतः समाज द्वारा निर्धारित किया जाता है – उस समाज की संस्थाओं व कानूनों द्वारा। इसीलिए वे अपने विश्लेषण में 'पात्रता' (Entitlement) की अवधारणा पर ज़ोर देते हैं न कि भोजन की उपलब्धता या व्यक्ति की इच्छा या क्षमता पर। यहां 'पात्रता' शब्द को एक विशिष्ट अर्थ में उपयोग किया जाता है। पुस्तक के तीसरे अध्याय में वे लिखते हैं – "पात्रता विश्लेषण. . . भोजन अर्जित करने के लिए समाज में जो तरीके उपलब्ध हैं उन पर ध्यान केंद्रित करता है। इसमें लोगों द्वारा भोजन उत्पादन करने की संभावनाएं, व्यापार की संभावनाएं, शासकीय अनुदानों पर उनका अधिकार और भोजन अर्जित करने के अन्य तरीके शामिल हैं।"

यानी किसी भी व्यक्ति की भोजन पाने की सिर्फ एक पात्रता नहीं है बल्कि कई पात्रताएं हैं। ये पात्रताएं उन तमाम बातों पर जैसे उसके उत्पादन, व्यापार, शासकीय अनुदान, भाई बंधुत्व रिश्ते आदि से निर्धारित होती हैं।

वह व्यक्ति या समूह भुखमरी का शिकार तब होगा जब ये तमाम पात्रताएं किसी न किसी कारण से शिथिल पड़ जाएं या निष्क्रिय हो जाएं।

आप समझ सकते हैं कि अंततोगत्वा भोजन की पात्रता सामाजिक रिश्तों पर निर्भर है और उनसे निर्धारित होती है। इसलिए आपको इस लेख में जगह-जगह पात्रता रिश्तों का ज़िक्र मिलेगा।

अनुवादक

जनवरी १९८८ में ट्रिनिटी कॉलेज के मास्टर के पद को संभालने के लिए जाते हुए पारंपरिक वेशभूषा में अमर्त्य सेन। इस पद को ब्रिटेन की सबसे ऊंची अकादमिक नियुक्ति समझा जाता है।

दोनों को सीधे-सीधे नहीं खा सकता। खाना खरीदने के लिए उसे बाल संवारने की अपनी सेवा को बेचकर धन कमाना पड़ेगा। तो भोजन की उसकी पात्रता, समाज में पर्याप्त भोजन उपलब्ध होने पर भी खतरे में पड़ सकती है – यदि किसी कारण से समाज में बाल कटवाने की मांग खत्म हो जाती है, और यदि वो कोई और काम नहीं ढूंढ पाता, व उसे किसी तरह की सामाजिक सुरक्षा का आसरा नहीं मिलता।

इसी प्रकार चप्पल बनाने वाले की भोजन की पात्रता नष्ट हो सकती है अगर चप्पलों की मांग अचानक गिर जाती है या फिर चमड़ा मिलना बंद हो जाता है। तब समाज में खाद्यान्न उपलब्धता में बदलाव न होते हुए भी वह भुखमरी का शिकार हो सकता है।

एक मज़दूर को भोजन की पात्रता हासिल करने के लिए पहले अपनी श्रम शक्ति बेचकर पैसा कमाना पड़ेगा। अगर उसे काम न मिले और किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा सहायता न मिले तो वह भूखा सोएगा। यदि अनाज की तुलना में चप्पल, कटिंग या श्रमशक्ति (मज़दूरी) की कीमतों में भारी बदलाव हो जाए तो भी अलग-अलग समूहों की खाद्यान्न पात्रता भुखमरी के स्तर के नीचे गिर सकती है। अतः पात्रता रिश्ते की संपूर्णता इस बात को प्रभावित करती है कि उसके पास भुखमरी से बचने की क्षमता होगी या नहीं – अनाज का उपलब्ध होना उनमें से मात्र एक कारक है।

अक्सर यह कहा जाता है कि भुखमरी का कारण अनाज की कमी नहीं है, बल्कि आमदनी और क्रय शक्ति की कमी है। मोटे तौर पर यह विचार पात्रता के मुद्दे को छूता ज़रूर है: आखिर बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था में आमदनी निश्चय ही खाद्यान्न हासिल करने की पात्रता दिलाती है। हालांकि पूरी तरह योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था में या कमी की अर्थव्यवस्था (Shortage Economy) में आमदनी के अलावा अन्य तरीकों से भी खाद्यान्न पात्रता प्राप्त की जाती है। फिर भी अकाल की अधिकांश परिस्थितियों को समझाने के लिए आमदनी आधारित तर्क अपनी जगह रखता है। लेकिन इसकी कमज़ोरी इस बात में है कि जहां पात्रता के लिए आमदनी मायने रखती है वहां भी आमदनी वाला सिद्धांत पात्रता पर केवल आंशिक रूप में प्रकाश डालता है। अगर हम यह कहें कि लोग इसलिए भूखे मरे क्योंकि उनके पास भोजन खरीदने के लिए पर्याप्त आमदनी नहीं थी तो तुरन्त सवाल उठेगा – आमदनी क्यों नहीं थी? और वे कितना कमा सकते हैं यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे क्या और किस कीमत पर बेच

पाते हैं। अतः केवल आमदनी पर चर्चा को केन्द्रित रखना अधूरे चित्र को ही सामने लाता है। और फिर अक्सर 'आमदनी' शब्द का उपयोग सांकेतिक हो जाता है जैसे किसान द्वारा उगाए गए अनाज को उसकी आमदनी कहना अजीब लगता है। अपने द्वारा उगाए गए अनाज पर उसका अधिकार और पात्रता की बात ज़्यादा समझ में आती है।

कहने का मतलब यह है कि अकाल और भुखमरी को समझने के लिए भोजन पात्रता से जुड़ी तमाम बातों का अध्ययन आवश्यक है – खाद्यान्न की उपलब्धता या आमदनी इस समस्या के अंश मात्र हैं।

2. 'गरीब' – संज्ञा की उपयोगिता

एक छोटा किसान और भूमिहीन मज़दूर दोनों गरीब हो सकते हैं। लेकिन अकाल में दोनों की कुण्डलियां अलग-अलग काम करती हैं। दोनों गरीब ज़रूर हैं मगर अकाल का शिकार होने की संभावना दोनों के लिए अलग है। अतः इस प्रश्न के संदर्भ में उन्हें 'गरीब' की विशाल श्रेणी में रखने से समझ नहीं बन पाएगी – बल्कि उन्हें विशिष्ट एवं पृथक वर्ग के सदस्यों के रूप में देखना लाज़िमी होगा। दोनों पेशे से, साधन संपत्ति पर अधिकार के हिसाब से और जिन पात्रता रिश्तों से बंधे हैं उनके हिसाब से भी फर्क हैं। जनसंख्या का गरीब और अमीर में वर्गीकरण कहीं-कहीं उपयोगी हो सकता है। लेकिन यह भुखमरी, अकाल और यहां तक कि गरीबी के विश्लेषण में मददगार नहीं होगा।

बिलकुल मोटे रूप में करें तो 'पूरी जनसंख्या' के आधार पर बात की जा सकती है। 'खाद्यान्न उपलब्धता में कमी' वाला सिद्धांत इसी श्रेणी का उपयोग करता है, यह देखने के लिए कि प्रति व्यक्ति भोजन उपलब्धता में कमी आई कि नहीं। नतीजा अक्सर निरर्थक ही निकलता है।*

लेकिन पात्रता विश्लेषण के तरीके में इस तरह की मोटी-मोटी श्रेणियों (पूरी जनसंख्या, अमीर गरीब आदि) का महत्व बहुत सीमित है। इस विश्लेषण के लिए हमें अधिक परिष्कृत श्रेणियों व अवधारणाओं की ज़रूरत है, ताकि अलग-अलग समूहों की पात्रता का अध्ययन हो सके – जिसमें एक-सी पात्रता और साधन वाले लोगों को एक समूह में रखकर देखा जा सके। केवल 'गरीब' कहने से कार्य-कारण संबंधों को समझना संभव नहीं है। क्योंकि गरीबी की एक-सी अवस्था

* देखिए इस पुस्तक के अध्याय 6-9; इन अध्यायों में 1942-43 के बंगाल अकाल, 72-74 के इंथियोपिया के अकाल, उत्तरी अफ्रीका के अकाल और 1974 में बांगलादेश के अकाल की विस्तृत समीक्षा है – *अनुवादक।*

तक पहुंचने के लिए लोग कई रास्तों से गुज़रकर आ सकते हैं। अकाल की परिस्थिति का विभिन्न पेशे के लोगों पर अलग-अलग असर पड़ता है – भले ही वे सब गरीब हों। इस कारण अमीर, गरीब जैसी मोटी श्रेणियों से बचने की ज़रूरत है।

ये तो रही बात कार्य-कारण संबंधों को जांचने में 'गरीब' संज्ञा की उपयोगिता की। इस संज्ञा का उपयोग किसी देश की गरीबी की समस्या की तीव्रता का मूल्यांकन करने के लिए भी होता है। आमतौर पर गरीबी का अंदाज़ लगाने के लिए सारे गरीबों को एक साथ रखकर गिना जाता है। 'गरीबी रेखा' पर और उसके नीचे कितने लोग हैं यह समझने के लिए निश्चित ही यह श्रेणी उपयोगी है। . . . फिर भी गरीबी की स्थिति के मूल्यांकन के लिए भी गरीबों की अलग-अलग श्रेणियों के बीच विभेद करने की ज़रूरत है। अभाव कितना है इस आधार पर ये श्रेणियां बन सकती हैं। जब केवल गरीबों की गिनती होती है तो एक सामान्य गरीब और एक भुक्कड़, दरिद्र के बीच विभेद नहीं होता है। अक्सर यह भी देखा गया है कि गरीबों की संख्या भले न बढ़े गरीबों की हालत बदतर होती गई। यानी विभिन्न तरह की गरीबियों के बीच विभेद न करने से गरीबी का मूल्यांकन भी सटीकता से नहीं हो पाता।

तो कहना लाज़िमी होगा कि 'गरीब' संज्ञा न केवल मूल्यांकन के लिए अपर्याप्त है और कार्य-कारण संबंध समझने के लिए प्रतिकूल है, बल्कि 'नीति निर्धारण' को भी यह एक विकृत रूप दे सकती है। नीति निर्धारक यही प्रयास करते हैं कि जो लोग गरीबी रेखा के इर्द-गिर्द हैं उन्हीं पर ध्यान दिया जाए। जो लोग अत्यंत गरीबी की हालत में हैं और जिन्हें सबसे अधिक मदद की ज़रूरत है, उन्हें छुआ तक नहीं जाता। इस बात के कई प्रमाण मिल चुके हैं।

3. खाद्यान्न उपलब्धता और भुखमरी

इस चर्चा में हमने देखा कि 'खाद्यान्न उपलब्धता में कमी' वाला सिद्धांत पूरे देश के स्तर पर लागू करने से विभेदपूर्ण समझ बनाने में मदद नहीं मिलती है। विश्व स्तर पर इस सिद्धांत का प्रयोग तो और भी ज़्यादा निरर्थक हो जाता है। इसके बावजूद विश्व की जनसंख्या और खाद्य उपलब्धता का संतुलन बनाए रखने पर वर्तमान में काफी ज़ोर दिया जा रहा है। जबकि विश्व स्तर पर प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता में कमी आना दुनिया में भुखमरी बढ़ने के लिए बिलकुल भी ज़रूरी शर्त नहीं है, लेकिन यह मान लिया गया है कि दोनों के बीच गहरा संबंध है। . . .

. . . भविष्य में जो भी हो वर्तमान

में इस कथन के लिए कोई आधार नहीं है कि विश्व के स्तर पर जनसंख्या वृद्धि की तुलना में खाद्यान्न उत्पादन धीमी गति से बढ़ रहा है। . . . अगर हम अपनी तस्वीर से संयुक्त राज्य अमेरिका को हटाकर भी देखें – जो कि दुनिया का एक प्रमुख खाद्यान्न उत्पादक देश है – तो भी नहीं लगता है कि खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की दर जनसंख्या की दर से कम है या जनसंख्या में वृद्धि की दर ने खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की दर को पीछे छोड़ दिया है। . . .

फिर भी हमारे अध्ययन व विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि भयंकर अकाल पड़ने की स्थितियां बन सकती हैं – लेकिन इनका खाद्यान्न उत्पादन से कोई सीधा संबंध नहीं होगा। वहीं पात्रता विश्लेषण, खाद्यान्न उत्पादन को जटिल सामाजिक रिश्तों के ताने बाने के संदर्भ में देखता है। इन रिश्तों में बदलाव अकाल की स्थिति निर्मित कर सकता है – खाद्यान्न उत्पादन में बिना कोई कमी आए।

मेरा उद्देश्य खाद्यान्न उत्पादन या उससे संबंधित अध्ययनों के महत्व को नकारना नहीं है। वे अपनी जगह महत्वपूर्ण ज़रूर हैं। . . . लेकिन भुखमरी को लोगों के बीच के रिश्ते के रूप में देखा जाना ज़रूरी है। भोजन प्राप्त करने की क्षमता पात्रता रिश्तों के तानेबाने पर निर्भर है।

इनमें से कुछ रिश्ते सीधे-सादे हैं जैसे किसान का अपने द्वारा उगाए गए अनाज पर हक या पात्रता। कुछ रिश्ते काफी जटिल हैं– जैसे खानाबदोश पशुपालक मवेशियों की अदलाबदली से अनाज प्राप्त करते हैं और इस प्रकार अपने लिए उपलब्ध पोषण को बढ़ा पाते हैं। तो कुछ रिश्ते बाज़ार व्यवस्था पर निर्भर हैं – जैसे चीज़ें बनाकर, बेचकर भोजन अर्जित करना। जबकि कुछ रिश्ते सार्वजनिक (सरकारी) नीतियों पर निर्भर करते हैं – जैसे बेरोज़गारी भत्ता, लंगर, राहत कार्य आदि। कुछ व्यापक आर्थिक प्रक्रियाओं से प्रभावित होते हैं तो कुछ स्थानीय विपदाओं से जुड़े हैं, वहीं कुछ और स्थानीय समस्याओं से। (जैसे क्षेत्रीय स्तर पर कीमतों के गिरने से या जलाशय में एक समूह को मछली पकड़ने से रोकने पर)। विभिन्न अकालों के अध्ययन में हमने इनके उदाहरण देखे हैं।

4. बाज़ार और खाद्यान्न

क्या अकाल के समय अकालग्रस्त इलाके में खाद्यान्न पहुंचाने का काम बाज़ार कर सकता है – यानी किसी क्षेत्र की खाद्यान्न कमी को पूरा करने के लिए दूसरे क्षेत्रों से खाद्यान्न उपलब्ध कराने में क्या बाज़ार की कोई भूमिका है? इस प्रश्न पर सदियों से खासकर ऐडम स्मिथ के ज़माने से बहस जारी

है। ऐडम स्मिथ (सन् 1776) का मानना था कि अकाल निवारण में बाज़ार की सकारात्मक भूमिका है। रॉबर्ट मालथस (सन् 1800) और अन्य लोगों ने स्मिथ का पुरज़ोर समर्थन किया। नीति निर्धारक लोग अर्थशास्त्रियों के विचारों से काफी प्रभावित थे, खासकर भारत के ब्रिटिश प्रशासक।

1812 में जब गुजरात में अकाल की परिस्थिति निर्मित हो रही थी तो बंबई प्रांत के गवर्नर ने सरकारी माध्यम से वहां अनाज पहुंचाने से इंकार कर दिया। उसने यह तर्क दिया कि यह काम बाज़ार का है। अपने निर्णय के पक्ष में उसने 'वैल्थ ऑफ नेशन्स' के प्रसिद्ध लेखक ऐडम स्मिथ की दलील प्रस्तुत की। उससे कई दशक पहले वारेन हेस्टिंग्स ने बंगाल के अकाल (1783) में शासकीय माध्यम से अनाज पहुंचाया था। कर्नल बैयर्ड स्मिथ ने हैस्टिंग्स की नीति की आलोचना की। कर्नल स्मिथ ने कहा था कि हेस्टिंग्स ने शायद एडम स्मिथ का अपना अध्ययन ठीक से नहीं किया था, और कटाक्ष करते हुए उन्होंने कहा कि इतने कम समय में वे इसे समझ पाएं इसकी अपेक्षा भी नहीं की जानी चाहिए क्योंकि 'वैल्थ ऑफ नेशन्स' का प्रकाशन हुए अभी कुछ ही समय हुआ है। स्मिथ का यह प्रसिद्ध ग्रंथ कुछ ही वर्ष पूर्व 1776 में प्रकाशित हुआ था। इस तरह अकाल में दखल न देने की यह ब्रिटिश नीति भारत में लगभग 19 वीं शताब्दी के अंत तक बनी रही।

अक्सर ऐसा भी हुआ कि इस नीति के कट्टर पक्षधर सूखाग्रस्त इलाकों में अधिक अनाज पहुंचाने की बाज़ार की असफलता से निराश हुए। 1865-66 में पड़े उड़ीसा के अकाल के दौरान कटक ज़िले के कमिश्नर इस बात से हताश हुए कि निजी व्यापारी बाहर से इस क्षेत्र में अनाज नहीं लाए। उनका कहना था, "अर्थशास्त्र के तमाम नियम यही बताते हैं कि कटक क्षेत्र में अनाज की आपात मांग को देखते हुए दूसरे क्षेत्रों से इसकी पूर्ति होनी ही थी।" लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

रशीद ने यह तर्क दिया है कि अक्सर व्यापारी भी एक एकाधिकारी-गुट बनकर अनाज के आने जाने पर रोक लगा सकते हैं और विशेष अभाव की स्थिति को बनाए रख सकते हैं।**

रशीद का यह कथन सही हो सकता है, लेकिन ऐसे समय जब अकाल के साथ बाज़ार में भावों की गिरावट भी हो रही हो तब बाज़ार में दूसरे क्षेत्रों

** अर्थशास्त्र में यह अपेक्षा की जाती है कि अगर कई व्यापारी हैं और वे देखते हैं कि किसी जगह मांग भयानक रूप से बढ़ रही है तो उनमें वहां पर माल बेचने की होड़ लग जाती है ताकि सभी बढ़ी हुई कीमतों का लाभ उठाएं। लेकिन जब वे आपस में मिल जाते हैं तो माल को मांग वाले क्षेत्र में पहुंचने से रोक सकते हैं और इस तरह अभाव की परिस्थिति को बनाए रख सकते हैं -अनुवादक

से माल खींचने की क्षमता भी कम हो जाती है। एडम स्मिथ ने यह माना था कि बाज़ार में मांग बढ़ेगी तो पूर्ति भी होगी। लेकिन मांग बढ़ ही न पाए तो क्या होगा? अगर लोगों की क्रय शक्ति क्षीण हो जाए तो बाज़ार में मांग कैसे बढ़े?*

और तो और, कई अकालों के संदर्भ में देखा गया है कि एक तरफ लोग भूखे मर रहे हैं और वहीं अकाल से प्रभावित क्षेत्र से अनाज का निर्यात हो रहा है। कुछ हद तक यह 1973 के इथियोपिया के वोलो प्रांत के अकाल के दौरान देखा गया और 1974 के बांगलादेश के अकाल के समय भी। 1840 में पड़े आयरलैंड के अकाल के दौरान खाद्य सामग्री का निर्यात एक महत्वपूर्ण राजनैतिक मुद्दा था।. . . भारत में पड़े अकालों में भी ऐसे पहलू देखे गए।

अगर 'पात्रता' की दृष्टि से देखें तो इसमें कोई भी अनोखी बात नहीं है कि अकाल की स्थिति में उस इलाके में माल पहुंचाने की बजाए बाज़ार वहां से माल निकालने का काम करे। बाज़ार की मांग शारीरिक या मानसिक ज़रूरतों का प्रतिबिंब नहीं है – वह तो क्रय शक्ति की पात्रता के आधार पर किए गए चुनावों को प्रतिबिंबित करती है। अगर किसी के पास बेचने के लिए बहुत कुछ नहीं है या क्रय शक्ति नहीं है तो वह बाज़ार में मांग (खरीद) भी नहीं सकता है, और प्रतिस्पर्धा में उन लोगों के मुकाबले मात खा जा जाता है जिनकी ज़रूरत भले ही उससे कम तीव्र (less acute) हो मगर जिनकी बाज़ार पात्रता अधिक है। . . . तो इस तरह खाद्यान्न का अकालग्रस्त क्षेत्र से बाहर जाना शायद बाज़ार का एक मूल गुणधर्म है जो कि पात्रता को ध्यान में रखता ज़रूरत को नहीं। . . .

अकाल अथवा पात्रता ह्रास

पात्रता विश्लेषण का तरीका यह मानता है कि अकाल एक आर्थिक विपदा है, महज एक खाद्यान्न संकट नहीं। यह सही है कि भुखमरी के शिकार सभी लोगों की परेशानी एक-सी है मगर उस हालात तक पहुंचने के उनके कारण और रास्ते अलग-अलग हैं।

हमने जिन चार अकालों का

* पुस्तक के सातवें अध्याय में इथियोपिया के एक प्रांत 'वोलो' में 1972 के भयंकर अकाल की चर्चा है। सेन दिखाते हैं कि इस क्षेत्र के गरीब किसानों की फसल खराब हुई – उनके पास खाने के लिए कुछ नहीं बचा, खरीदने के लिए साधन नहीं था। मवेशी, ज़मीन आदि सब चीज़ों की कीमतों में भारी गिरावट आई। इसके कारण उन्हें बेचने से भी फायदा नहीं हो पाया। इस वजह से बाज़ार में मांग नहीं बढ़ पाई और अनाज की कीमतें अकाल पूर्व स्थिति पर ही बनी रहीं यानी बाज़ार में अनाज की मांग तभी बढ़ेगी जब लोगों में क्रय शक्ति हो – अनुवादक

अध्ययन किया उनकी एक तुलनात्मक तालिका यहां प्रस्तुत है।(तालिका साथ वाले पृष्ठ पर दी गई है)।

अंत में मैं इस 'पात्रता विश्लेषण' के संबंध में चार महत्वपूर्ण बातें कहना चाहता हूं।

1. यह तरीका अकाल के अध्ययन के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो किसी एक खास कारण पर केन्द्रित नहीं है। यह एक परिकल्पना है जिसका सत्यापन वास्तविकता के अध्ययन से किया जा सकता है। अगर यह दिखाया जा सकता है कि अकाल, पात्रता ह्रास के कारण से न होकर किसी सोचे समझे हुए चयन के कारण होता है (जैसे जब चावल खाने वाले गेहूं खाने से इंकार कर दें, या लोग काम करने से मना कर दें) या फिर अन्य किसी कारण से जो पात्रता से जुड़ा नहीं हो (जैसे कि लूटपाट) तो यह विश्लेषण लागू नहीं होगा। इस तरीके का मुख्य महत्व यह नहीं है कि हम जांचें कि क्या अधिकांश अकाल 'पात्रता' के संकट के कारण हुए – अलबत्ता हम पाएंगे कि वस्तुस्थिति यही थी – पर जहां पात्रता के यह संकट होते हैं, वहां उनके स्वरूपों और कारणों को निरूपित कर पाना ही इसकी उपयोगिता है। अगर हम अलग-अलग तरह के पात्रता ह्रास को बेहतर समझ पाते हैं तो नीति निर्धारण, अकाल से बचाव, राहत कार्य आदि बेहतर हो सकेगा।

2. यह एक रोचक बात है कि अकाल पूरी अर्थव्यवस्था के चढ़ाव (boom) और मंदी (Slump) दोनों स्थितियों में पड़ सकता है। सामान्य धारणा में अकाल को मंदी या उतार के दौर से जोड़कर देखा जाता है। चढ़ाव के दौर में अकाल पड़ना सामान्य समझ को स्वीकार्य नहीं होता, लेकिन बंगाल (1943) जैसे अकाल अर्थव्यवस्था के तेज़ी के दौर में हुए हैं। अनाज का उत्पादन बढ़ने पर भी अकाल संभव है अगर बाज़ार या शासन व्यवस्था किसी समूह के प्रतिकूल हो जाए। तेज़ी के समय अगर तेज़ी का असर सभी समूहों पर एक-सा न हो तो ऐसा हो सकता है – जैसे शहर पर ज़्यादा अनुकूल प्रभाव और गांव पर कम अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव; या फिर एक समूह जब किसी दूसरे समूह के पात्रता अधिकार पर कब्ज़ा कर ले। कभी- कभी ऐसा भी होता है कि गरीबी रेखा के इर्द-गिर्द वाला समूह तेज़ी का फायदा उठा पाता है और उस रेखा के ऊपर उठ जाता है लेकिन उसके ही समानांतर अत्यंत गरीब तबका अकाल का शिकार बन सकता है।

कौन-सा अकाल	क्या भोजन उपलब्धता में भारी गिरावट थी?	कौन मे पेशे के लोग मर्वाधिक प्रभावित हुए	क्या उम ममूह के लोगों ने बड़ी मात्रा में अपने माधन खोए	क्या वह समूह क्रयशक्ति हस्तांतरण से प्रभावित हुआ	क्या उम ममूह की पात्रता पर मीधा मंकट हुआ	क्या उम ममूह की व्यापार संबंधित पात्रता का नुकसान हुआ?	सामान्य आर्थिक स्थिति कैसी थी
बंगाल का अकाल 1943	नहीं	ग्रामीण मज़दूर	नहीं	हां	नहीं	हां	तेज़ी
इथियोपिया का अकाल (वोलो) 1973	नहीं	किसान	थोड़ा सा, हां	हां	हां	नहीं	मंदी
इथियोपिया का अकाल (हरेरघे) 1974	हां	पशु पालक	हां	हां	हां	हां	मंदी
बांग्लादेश का अकाल 1974	नहीं	ग्रामीण मज़दूर	पहले, हां	हां	नहीं	हां	मिली जुली

यानी कुल गरीबों की संख्या घटने के बावजूद अकाल पड़ना भी अस्वाभाविक नहीं है।

खाद्यान्न उपलब्धता में कमी और भोजन की सीधी पात्रता के बीच विभेद करने की ज़रूरत है। अगर एक किसान की फसल नष्ट हो जाती है, भले ही अन्य लोगों की फसल ठीक रहे और पूरे क्षेत्र में फसल अच्छी रही हो, वह किसान भुखमरी की कगार पर आ जाता है। इसका विपरीत भी हो सकता है – अन्य लोगों की फसल खराब हुई हो और एक की अच्छी हुई हो। ऐसे में वह अकाल से बच सकता है भले ही परिस्थितियां कमी की हों। कहने का मतलब यह है कि अकाल की समस्या उस क्षेत्र में अनाज आयात करने से दूर नहीं हो सकती है। इसके लिए पात्रता को सुदृढ़ बनाना होगा।

4. पात्रता को केन्द्र में रखकर अध्ययन करने का एक और नतीजा है – कानूनी अधिकारों पर गौर करना। अन्य कारक तत्व (जैसे बाज़ार) कानूनी ढांचों के अंतर्गत और उनके माध्यम से काम करते हैं (मिल्कियत के कानून, अनुबंधित रिश्ते, आदि)। दरअसल खाद्यान्न उपलब्धता और पात्रता के बीच कानून खड़ा है। भूखों की मौत सख्त बेबाकी के साथ कानूनी व्यवस्था का अक्स खींच डालती है।

अमर्त्य सेन: विख्यात अर्थशास्त्री। 3 नवंबर 1933 को जन्मे अमर्त्य सेन की पढ़ाई रविंद्रनाथ टैगोर के शांतिनिकेतन, कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज और कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज में हुई। 23 साल की उम्र में वे कलकत्ता के जाधवपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हो गए थे। इसके बाद वे दिल्ली विश्वविद्यालय, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और हावर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे। इसी साल के शुरू में उन्हें कैम्ब्रिज में ट्रिनिटी कॉलेज का मास्टर मनोनीत किया गया। इस पद को ब्रिटेन की सबसे ऊंची अकादमिक नियुक्ति समझा जाता है।

संपादकीय टीप: सन 1981 में अमर्त्य सेन ने एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक के अंतिम अध्याय का भाषांतरण यहां दिया जा रहा है। वास्तव में यह शब्दशः भाषांतरण न होकर भावानुवाद है। लेकिन यथासंभव हर वाक्य में लेखक की अभिव्यक्ति, भाव व अर्थ को बनाए रखने का प्रयास है। कुछ वाक्यों का अनुवाद गैर-ज़रूरी मानकर छोड़ा गया है। उन्हें '. . .' से इंगित किया गया है।

दरअसल 19 वीं शताब्दी से गरीबी और भुखमरी की समस्या भारतीय अर्थशास्त्रियों के चिन्तन और शोध में प्रमुख रही है। सबसे पहले दादाभाई नौरोजी ने अपनी किताब *Poverty : an Unbritish Rule in India* में इस विवेचना की परंपरा की नींव डाली। इसी सिलसिले में अमर्त्य सेन की यह किताब एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है।

इसमें उन्होंने न केवल इस मुद्दे पर विचार किया कि भुखमरी क्यों होती है बल्कि इस समस्या को समझने के लिए कौन-सा दृष्टिकोण उपयोगी है उस पर गौर किया। अत: अर्थशास्त्र के लिए यह किताब एक मील का पत्थर साबित हुई।

लेकिन सेन यहां नहीं रुके। हाल के अध्ययनों में उन्होंने इस समस्या के एक और पक्ष को टटोला है। वह है – शासन पद्धति। वे कहते हैं:

"निश्चय ही यह एक दिलचस्प तथ्य है कि किसी लोकतांत्रिक देश में किसी महत्वपूर्ण अकाल का कोई उदाहरण नहीं है – जिन देशों में सरकार विपक्ष के प्रति सहिष्णुता रखती है; चुनावी प्रक्रिया को स्वीकार करती है और जिसकी खुले आम आलोचना की जा सकती है। अगर किसी सरकार को संसद में विपक्ष के सवालों का जवाब देना हो, मीडिया में आलोचना का सामना करना पड़ता हो और निश्चित समय के अंतराल में चुनाव का सामना करना पड़ता हो, ऐसी सरकार अकाल की परिस्थिति को नज़रअंदाज़ करने की गलती कतई नहीं कर सकती है। लेकिन जहां इस तरह की शासन व्यवस्था नहीं है, वहां इस बात की कोई गारंटी नहीं है।"

इस बात के उदाहरण स्वरूप वे चीन के भयंकर अकाल (1958-61) – जिसमें दो से तीन करोड़ लोग मरे थे – का ज़िक्र करते हैं। वे यह भी बताते हैं कि भारत का लोकतंत्र कितना भी कमज़ोर हो उसने इतना तो कमाल कर दिखाया कि 1947 के बाद बड़े पैमाने पर देश में कोई अकाल नहीं हुआ – हालांकि फसल के अक्सर नष्ट होने से अकाल का साया मंडराता रहा है।

(देखिए : ज़्यों ड्रीज़ एवं अमर्त्य सेन)

सेन की किताब जब छपी थी तो कई समालोचकों की टिप्पणी थी कि इसमें नया कुछ नहीं कहा गया है। अपने एक मित्र को लिखे पत्र में सेन ने इस आरोप को स्वीकार करते हुए लिखा, "यह सही है कि मैंने कुछ नया कहने का प्रयास नहीं किया। . . . अगर हमारी और आपकी दादी या नानी सत्ता में होतीं तो शायद अकाल कभी न पड़ता।"

उनका आशय था कि जन-सामान्य अपने अनुभव से अर्थव्यवस्था की जो समझ बनाते हैं उसे अर्थशास्त्रियों व शासकों तक पहुंचाना ही उनका उद्देश्य है। सेन ने इतना तो किया ही, मगर जन-सामान्य की समझ को और गहरा और पुख्ता करने में भी मदद की।

*इस लेख का अनुवाद **सी. एन. सुब्रह्मण्यम** ने किया है। वे एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध हैं।*

क्या हमारे विश्वास

अनीता रामपाल

ऊपर दी गई एक पेंटिग में होली का एक दृश्य है। यह चित्र चंबा शैली का है और सन् 1775 में बना था। चित्र में पिचकारियों की धार को ज़रा ध्यान से देखिए। क्या पिचकारी से निकलते पानी की धार वास्तव में ऐसी सीधी लाईनों में जाती है? यदि नहीं तो फिर कैसे गिरती है? अब ज़रा अठाहरवीं शताब्दी के एक और चित्र (चित्र-2) को देखिए, यह यूरोप में बना है। इसमें एक तोप का गोला दर्शाया गया है। ज़रा देखिए कि क्या गोले का पथ चित्र में सही दिखाया गया है? यदि नहीं तो फिर कैसा होना चाहिए?

इस लेख का उद्देश्य पुराने चित्रों पर महज़ नुक्ताचीनी करना नहीं है। आखिर कलाकार की कुछ अपनी कल्पना रही होगी और

न्यूटन को न मानें?

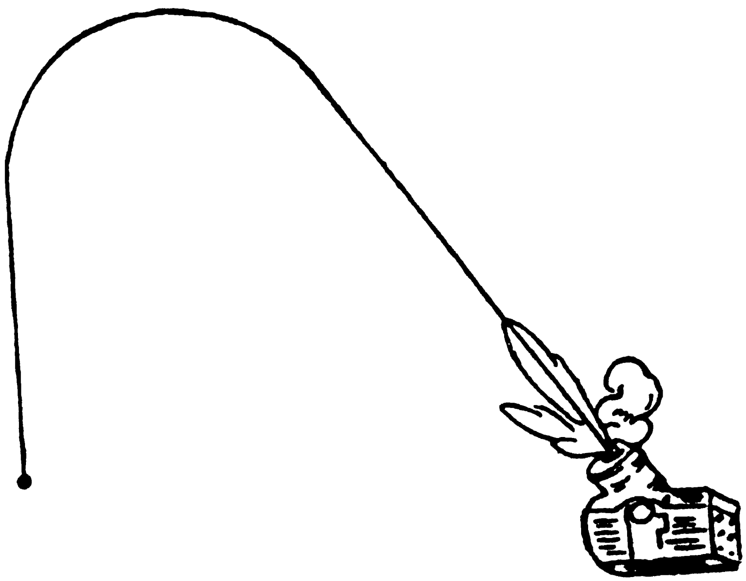

चित्र:2

हमारी क्या मजाल कि उस पर ऐसे-वैसे प्रश्न उठाएं कि – यह लाईन सीधी नहीं, वक्र होनी चाहिए थी। पर हम यह ज़रूर समझना चाहते हैं कि उस कलाकार के मन में क्या धारणा है जिसके कारण वह गिरती हुई वस्तु को यूं सीधी लाईन से दर्शाता है। जबकि वास्तव में वस्तुएं इस तरह गिरती ही नहीं हैं। और हम केवल कलाकार का मन ही नहीं, अन्य लोगों का मन भी समझना चाहते हैं। सभी का – चाहे वो छोटे हों या बड़े, विज्ञान पढ़ते हों, पढ़ाते हों या फिर उससे कोसों दूर रहना चाहते हों।

शुरुआत हमने दिल्ली के चार स्कूलों में, दसवीं कक्षा के छात्रों के साथ की थी। दसवीं इसलिए कि तब तक उन्होंने चलन के सिद्धांतों (Laws of Motion) के बारे में पढ़ लिया होता है। और हम यही अध्ययन करना चाहते थे कि 'बल-विज्ञान' यानी मेकेनिक्स की जो मूल अवधारणाएं हैं, जैसे चलन या बल, उनके बारे में छात्रों के अपने विश्वास क्या हैं? क्या ये विश्वास

उन सिद्धांतों से मेल खाते हैं जो उन्हें भौतिकी में सिखाए जाते हैं? यदि नहीं तो उनके इन विश्वासों का स्रोत क्या है। हमने दो ऐसे स्कूल लिए जिन्हें देश के प्रमुख पब्लिक स्कूल माना जाता है और जिनके छात्र हमेशा बोर्ड की परीक्षाओं में ढेर सारे नंबर बटोर लेते हैं। और दो स्कूल ऐसे लिए जो सामान्य सरकारी स्कूल थे, जिनके छात्रों को न तो कोई खास सम्मान प्राप्त था, न ही सुविधाएं; और न ही उन्हें नंबर लेने में माहिर बनाया गया था।* दोस्ताना बातचीत के दौरान सभी छात्रों को विश्वास दिलाया गया कि हमारे प्रश्न किसी परीक्षा के लिए नहीं थे और न ही उनका निजी रूप से मूल्यांकन होना था। हम तो सिर्फ यह समझना चाह रहे थे कि कितने लोग एक तरह से सोचते थे और क्यों? हमने उन्हें तेरह प्रश्न दिए। इन्हें हल करने के लिए समय का कोई दबाव नहीं था। प्रश्न हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों ही में उपलब्ध थे। छात्रों ने रुचि से उत्तर दिए और बाद में खूब देर तक उन पर चर्चा भी की। यहां हम केवल दो प्रश्नों की चर्चा करेंगे।

सीधी गिरी या फिर. . .

वस्तु नीचे की ओर कब सीधी गिरती है? तभी जब वह स्थिर अवस्था से गिरे, यानी गिरने से पहले गतिशील न हो। क्योंकि तब नीचे की ओर लगने वाले बल के कारण उसकी गति केवल नीचे की

पहला सवाल:

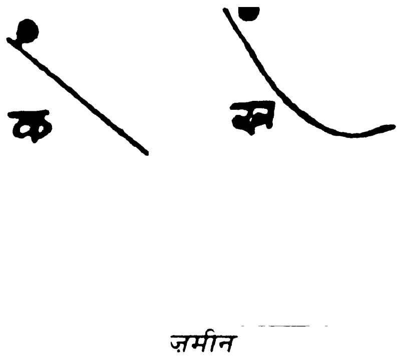

चित्र में दिखाए गए दो अलग-अलग तलों पर एक लोहे की गेंद को लुढ़काया जाता है। हर तल के निचले सिरे से लेकर ज़मीन तक गेंद कैसे पहुंची – उसकी चाल को चित्र में दर्शाओ। इस प्रश्न में अधिकतर छात्रों ने गेंद को सीधी लाईन में नीचे गिरते दिखाया। तल-क के लिए 32 छात्रों ने नीचे की ओर सीधी खड़ी लाईन बनाई और 28 ने तल की ही दिशा में सीधी लाईन आगे बढ़ा दी। तल-ख में 51 ने लाईन को थोड़ा ऊपर ले जाकर फिर सीधे नीचे गिराया।

* कुल छात्र संख्या 135 थी।

ओर ही होगी। परंतु यदि पहले से ही किसी अन्य दिशा में वस्तु की कुछ गति है तो उसका गिरने का पथ हमेशा एक परवलय (पैराबोला) के रूप में ही होगा। यह पथ दो अलग दिशाओं में गति के होने के परिणाम से ही बनता है। चूंकि हर क्षण पर वस्तु आगे भी जा रही है और साथ ही गिर भी रही है इसलिए हर खंड में उसका पथ वक्र या गोलाईदार ही होगा, सीधा नहीं।

यह बात बीज-गणित के आधार पर स्कूलों में छात्रों को बताई भी जाती है, खासकर जब वे किसी प्रक्षिप्त या फेंकी गई वस्तु के चलन के सिद्धांत को पढ़ते हैं। वैसे सिद्धांत को छोड़ भी दें तो वे रोज़ाना ज़िंदगी में इस बात को देखते भी हैं – पिचकारी से पानी छोड़ते हुए, तीर कमान या गुलेल से खेलते हुए या फिर गेंद फेंकते हुए आदि। तो भी ऐसी सामान्य घटना को सिर्फ 18-19 प्रतिशत बच्चे ही क्यों सही दर्शा पा रहे थे? यही नहीं, जब दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में एम. एस. सी. के छात्रों से यही प्रश्न किया गया तो वहां भी 50 प्रतिशत से अधिक ने गिरती हुई गेंद का पथ सीधी लाईन में नीचे दिखाया।

यह बात केवल चित्रों में पथ दर्शाने की नहीं है। किसी गतिविधि को करते हुए भी यही विश्वास झलकता हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली के हाई स्कूल में भौतिकी पढ़ाने वाले कई शिक्षकों के साथ एक गोष्ठी में हमने उन्हें एक गतिविधि करने को कहा। कमरे के बीच में एक टोकरी रखी थी। हर व्यक्ति को हाथ में गेंद लिए तेज़ी से चलकर आना था और गेंद को ऐसे छोड़ना था कि वह टोकरी में गिरे। अधिकतर व्यक्ति गेंद को तभी छोड़ते थे जब उनका हाथ टोकरी के ठीक ऊपर होता। और होता यह कि गेंद टोकरी के आगे ही गिरती। यानी यहां भी वही अपेक्षा – कि गेंद सीधी नीचे गिरेगी। जैसे कि सीधे नीचे गिरना तो गेंद के लिए हर हालत में स्वाभाविक ही हो। इसी प्रकार के कई प्रयोग अमेरिका के दो विश्वविद्यालयों में हुए थे और वहां भी पाया गया कि भौतिकी के सिद्धांत जानने के बावजूद छात्रों की अपेक्षाओं और सहज विश्वासों में अंतर नहीं आया था। वे सिद्धांतों से नहीं अपने सहज विश्वासों से ही काम करते। और यह सहज विश्वास इतने प्रबल थे कि विज्ञान की पढ़ाई इन पर प्रश्न-चिन्ह लगाने में असमर्थ रही थी।

अगला सवाल भी ऐसे ही एक अटल विश्वास को उभारता है और इन विचारों के इतिहास की ओर

इशारा करता है।

बल की दिशा किधर?

आगे चर्चा करने से पहले आप से निवेदन है कि आप भी अपना उत्तर दर्शाएं – जैसा भी आप के मन में आता है। ताकि आगे की चर्चा का आप पूरा मज़ा ले सकें।

दूसरा सवाल:

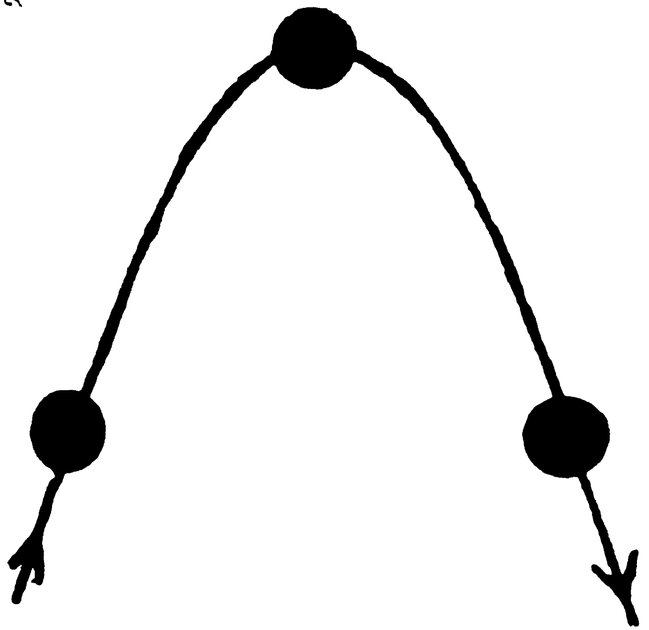

एक गेंद ऊपर की ओर फेंकी गई। चित्र में उसकी तीन अलग-अलग स्थितियां दिखाई गई हैं। गेंद की हर स्थिति पर तीर के निशान से दिखाओ की उस पर वहां जो बल लग रहा है उसकी दिशा क्या है?

इस प्रश्न का सही उत्तर तो दसवीं के केवल 4% और एम. एस. सी. के 10% छात्रों ने दिया। क्या था अधिकतर का विश्वास? अधिकतर लोगों को लगता है कि जिस दिशा में गेंद जा रही हो उसी दिशा में बल भी लग रहा होता है। क्या आप को भी ऐसा ही लगा?

वास्तव में यहां बल तो केवल एक ही है, और वह हर जगह नीचे की ओर लग रहा है। यह है गुरुत्वाकर्षण बल या पृथ्वी का खिंचाव बल। गेंद पर लग रहे इस बल को हम गेंद का भार भी कहते हैं। तो फिर चक्कर क्या है? इतने लोगों का मन यह मानने को तैयार क्यों नहीं कि बल तो हर स्थिति में केवल नीचे को ही लग रहा है?

दसवीं के एक प्रतिभाशाली छात्र ने बहुत ही आत्म-विश्वास के साथ अपने उत्तर का समर्थन देते हुए कहा था, "किसी गेंद को उछालते समय हम उसको एक ऊपरी बल

प्रदान करते हैं जो धीरे-धीरे खर्च होता जाता है। सबसे ऊपर की स्थिति में गेंद को दिया बल उस पर लगने वाले गुरुत्वाकर्षण बल के बराबर हो जाता है। यानी गेंद पर कुल बल शून्य हो जाता है इसलिए गेंद ऊपर जाकर रुक जाती है। इसके बाद गुरुत्वाकर्षण बल ही प्रभाव डालता है और गेंद को नीचे ले आता है।''

यह सुनकर हम दंग रह गए थे। चूंकि यह कथन वही था जो गैलिलियो के शुरू के लेखों में मिलता है। आश्चर्य की बात यह है कि इन छात्रों को ऐसे कथन कभी किसी ने सिखाए नहीं फिर भी इतने विश्वास के साथ कैसे अभिव्यक्त करते हैं इन्हें? गेंद को उछालने के बाद हमारा लगाया बल उसमें समाया रहता है ऐसा तो कतई सही नहीं है, या फिर किसी वस्तु को गतिशील रखने के लिए बल का होना आवश्यक है – यह विचार भी पढ़ाए गए सिद्धांतों के विपरीत है। फिर भी ऐसे अटल सहज विश्वासों की बुनियाद क्या है? और ये विचार केवल दिल्ली ही नहीं परंतु विश्व के कई देशों के लोगों में पाए गए हैं।

चलन का इतिहास

यहीं से बात बढ़ती है इन विचारों के इतिहास की ओर – हज़ारों साल पहले से लोग वस्तुओं को चलते, गिरते या रुकते देखते आए हैं और इन प्रक्रियाओं के बारे में प्रश्न पूछते रहे हैं। पुराने समय में इन प्रश्नों को वैज्ञानिक नहीं, दार्शनिक माना जाता था। चलन के सिद्धांत का सबसे पुराना नमूना अरस्तू के ज़माने से हमें प्राप्त होता है। अरस्तू ने कहा था कि, ''निर्जीव वस्तुओं में दो प्रकार का चलन होता है – स्वाभाविक चलन तथा बलकृत चलन। पृथ्वी पर वस्तुओं का स्वयं सीधा नीचे गिरना या हवा से हल्के धुएं आदि का स्वयं ऊपर जाना – इनको उसने स्वाभाविक चलन का उदाहरण माना। तथा अंतरिक्ष में सभी पिंडों का पृथ्वी के गिर्द चक्कर काटना भी स्वाभाविक चलन माना गया (उस समय यही मान्यता थी कि पृथ्वी ही ब्रह्मांड का केंद्र है)।

अरस्तू ने बलकृत चलन उस क्रिया को कहा जो स्वाभाविक नहीं थी और कहा कि बलकृत चलन के लिए बाहरी बल की आवश्यकता होती है। उसने कहा कि वस्तु जिस दिशा में गतिशील होगी उसी दिशा में उस पर बल भी लग रहा होगा और यदि गति बराबर रहती है, यानी बदलती नहीं, तो बल भी नहीं बदल रहा होगा। 'बल-विज्ञान' पर उसकी पुस्तक में लिखा है –

"एक गतिशील वस्तु तभी रुक जाती है जब उस पर लगने वाला बल उसको और धकेलने में समर्थ नहीं रहता।"

ज़ाहिर है कि अरस्तू का यह सिद्धांत कई प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाता था जैसे कि एक वस्तु को गतिशील कर दिया तो फिर कौन-सा बल उसे चलाए रखता है? जैसे, एक बार तीर को कमान से छोड़ दिया तो फिर तीर को चलाए रखने के लिए बल कहां से आया? अरस्तू का सुझाव था कि तीर जिस हवा को हटाकर आगे बढ़ता जाता है वही हवा पीछे जाकर तीर को धकेलती जाती है। पर यह कैसे संभव है? जो हवा तीर को रोकने का काम कर रही है वही उसे आगे भी धकेल रही है? इसी विडंबना के कारण कई सदियों बाद के मध्यकालीन वैज्ञानिक भी अरस्तू के सिद्धांत से असंतुष्ट थे। पर सही उत्तर उनके पास भी नहीं था। खैर, ऐसे रोचक सवाल-जवाबों से शुरू हुई थी बल-विज्ञान या 'मेकेनिक्स' की दास्तां।

और कोई चारा भी नहीं था, चूंकि उस समय ऐसे मसलों को प्रयोग द्वारा सिद्ध करना संभव भी नहीं था। विचार-विमर्श, वाद-विवाद के बल पर ही वह सिद्धांत मिला जो अरस्तू के सिद्धांत से बेहतर साबित हुआ। सुझाव यह था कि जब किसी बाहरी बल के कारण कोई वस्तु गतिशील होती है तो उस बल के कारण वस्तु में एक खास गुण आ जाता है जिसे वेग कहा गया था। इसी वेग से वस्तु गतिशील रहती है। जब यह वस्तु किसी अवरोधक का सामना करती है तो वह या तो रुक जाती है या धीरे होकर चलती रहती है। कितनी धीरे होगी यह इस पर निर्भर करता है कि अवरोधक ने कितने वेग को निष्क्रिय कर दिया। चौदहवीं शताब्दी में फ्रांस में भी ऐसा ही सिद्धांत विकसित हुआ था जिसमें वेग की जगह 'इम्पेटस (संवेग)' कहा गया था। यह वेग आज की उस धारणा की ओर इशारा था जिसे हम *मोमेंटम* भी कहते हैं। इशारा सही ही था, फिर भी बल और वेग की पूरी समझ विकसित नहीं हुई थी।

गैलिलियो और न्यूटन

गैलिलियो शुरू में वेग के ही सिद्धांत को मानता था। पर शीघ्र ही उसने जान लिया कि गतिशील वस्तु के रुकने के लिए बाहरी बल का होना ज़रूरी है – केवल यह कहना काफी नहीं कि उसका वेग खत्म हो गया।

गैलिलियों ने अलग-अलग सतहों पर एक गेंद लुढ़का कर देखा कि

सबसे चिकनी सतह पर गेंद अधिक दूर तक जाती है। इससे उसने यह कल्पना की कि यदि ऐसी सतह हो जिस पर घर्षण हो ही नहीं और गेंद पर कोई अन्य बाहरी बल न हो तो गेंद चलती ही जाए – रुके ही नहीं। कल्पना की यह एक महत्वपूर्ण छलांग थी जिसने चलन का सबसे गहरा सिद्धांत पकड़ लिया था, जो सदियों से पकड़ में नहीं आ रहा था। और वास्तव में इस बात को शायद कल्पना ही पकड़ सकती थी। चूंकि आम ज़िंदगी में ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं दिखती जिसमें कोई बल न लग रहा हो। कोई वस्तु फेंको तो उस पर पृथ्वी का बल या फिर हवा का अवरोधक बल लगेगा। किसी सतह पर वस्तु लुढ़काओ तो, चाहे वह बर्फ की ही सतह हो, उस का भी कुछ न कुछ घर्षण बल होगा। इसीलिए पृथ्वी पर होती क्रियाओं को देखकर यह समझ पाना कि बल के बिना चलन कैसा होगा, या फिर बल लगने से चलन पर क्या असर पड़ता है शायद असंभव है। और चक्कर यह है कि इन प्रक्रियाओं को देखते समय हमें यह तो दिखता नहीं कि इनमें वास्तव में बल लग रहा है या नहीं।

गतिशील वस्तु पर लग रहा पृथ्वी का बल, हवा का अवरोधक बल या सतह का घर्षण बल – ये सब तो हमारे लिए अदृश्य ही हैं। हमारा मन तो तभी मानता है कि वस्तु पर बल लग रहा है जब साफ-साफ दिखाई दे कि कोई जीव या मशीन उसे धकेल रहे हैं। सदियों से बल की हमारी सहज धारणा यही रही है। हम जो देखते आए हैं वह यह कि जब किसी वस्तु पर बल लगाओ तो वह चलती है और कुछ देर बाद स्वयं रुक जाती है। इसीलिए अरस्तू की तरह आज भी हमारा मन कहता है कि चलन के लिए लगातार उसी दिशा में बल लगते रहना चाहिए। और वस्तु को कुछ रोकने वाला न हो तो वह स्वाभाविक रूप से सीधी नीचे गिरती है।

चलन के विचारों को सही ढंग से व्यवस्थित न्यूटन ने ही किया और तीन सिद्धांतों के रूप में पेश किया। उसने कहा कि कोई बल न लग रहा हो तो गतिशील वस्तु बराबर उसी (एकरूप) गति से चलती रहेगी – उसी दिशा की सीध में। पर यदि कोई बल लगातार लग रहा है तो वस्तु की गति बदलती जाएगी, जैसे सीधे नीचे गिरने में गति तेज़ होती जाती है। वस्तु की केवल दिशा बदलना भी गति बदलना माना जाता है और उसके लिए भी बल होना आवश्यक है। जैसे पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाने

में चांद की दिशा हर क्षण बदल रही है (चाहे वह एक चक्कर की कुल दूरी हमेशा बराबर समय में तय करता है)। यहां बल है पृथ्वी और चांद के बीच का आकर्षण बल।

मूल बात तो यह है कि सिद्धांत तो हम पढ़ लेते हैं, कठिन सवाल भी हल कर लेते हैं; पर हमारा मन नहीं मानता। हमारे विश्वासों को ध्यान से टटोलो तो वे सदियों पहले के विश्वासों से मेल खाने लगते हैं। इतिहास में चलन के इन विचारों को विकसित होने में बहुत लंबा समय लगा, गहरे सवाल जवाब, प्रयोग आदि के आधार पर विश्वास हिले, कल्पना ने नई अंगड़ाई ली, तभी जाकर संभव हुआ एक संतोष-प्रद समझ का उभरना। विज्ञान शिक्षण भी जब तक हमारे सहज विश्वासों को पहचानकर उन्हें चुनौती नहीं देता, उन्हें बदलने का अवसर नहीं देता तब तक इन भिन्न विचारों को हम सही ढंग से आत्मसात नहीं कर पाएंगे। हां, दोहरा ज़रूर देंगे, स्कूल-कॉलेज के औपचारिक वातावरण में उन सिद्धांतों का दक्ष उपयोग भी कर लेंगे – पर दिल की गहराइयों तक शायद नहीं ले पाएंगे।

अनीता रामपाल: लालबहादुर शास्त्री अकादमी, मसूरी में फैलो; होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

यह लेख एकलव्य द्वारा प्रकाशित विज्ञान व टेक्नॉलॉजी फीचर सर्विस 'स्रोत' के अक्टूबर 1989 के अंक से लिया गया है।

संदर्भ सजिल्द

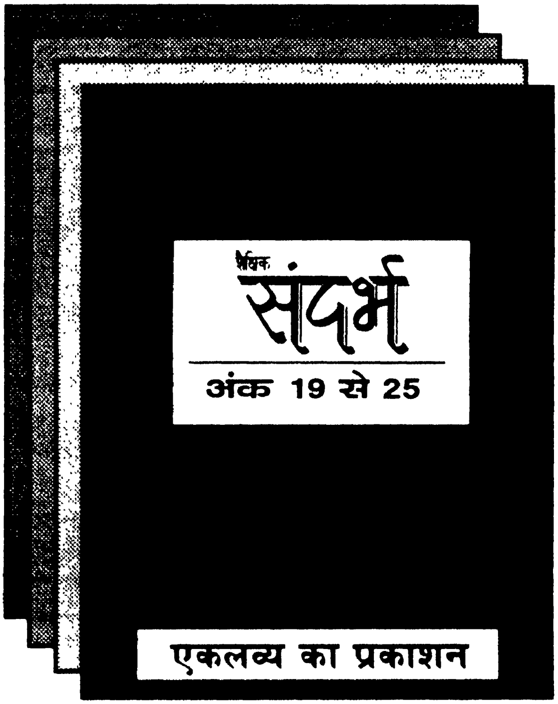

संदर्भ सजिल्द: संदर्भ के अंक '19 से 25' का सजिल्द संस्करण। इन अंकों में प्रकाशित लेखों का विषयवार इंडेक्स संस्करण के साथ है।

मूल्य: 65 रुपए (रजिस्टर्ड डाकखर्च सहित)

अंक '1 से 6', अंक '7 से 12' तथा अंक '13 से 18' के सजिल्द संस्करण भी उपलब्ध। प्रत्येक की कीमत 65 रुपए।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद-461 001

एकलव्य
ई-1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462 016

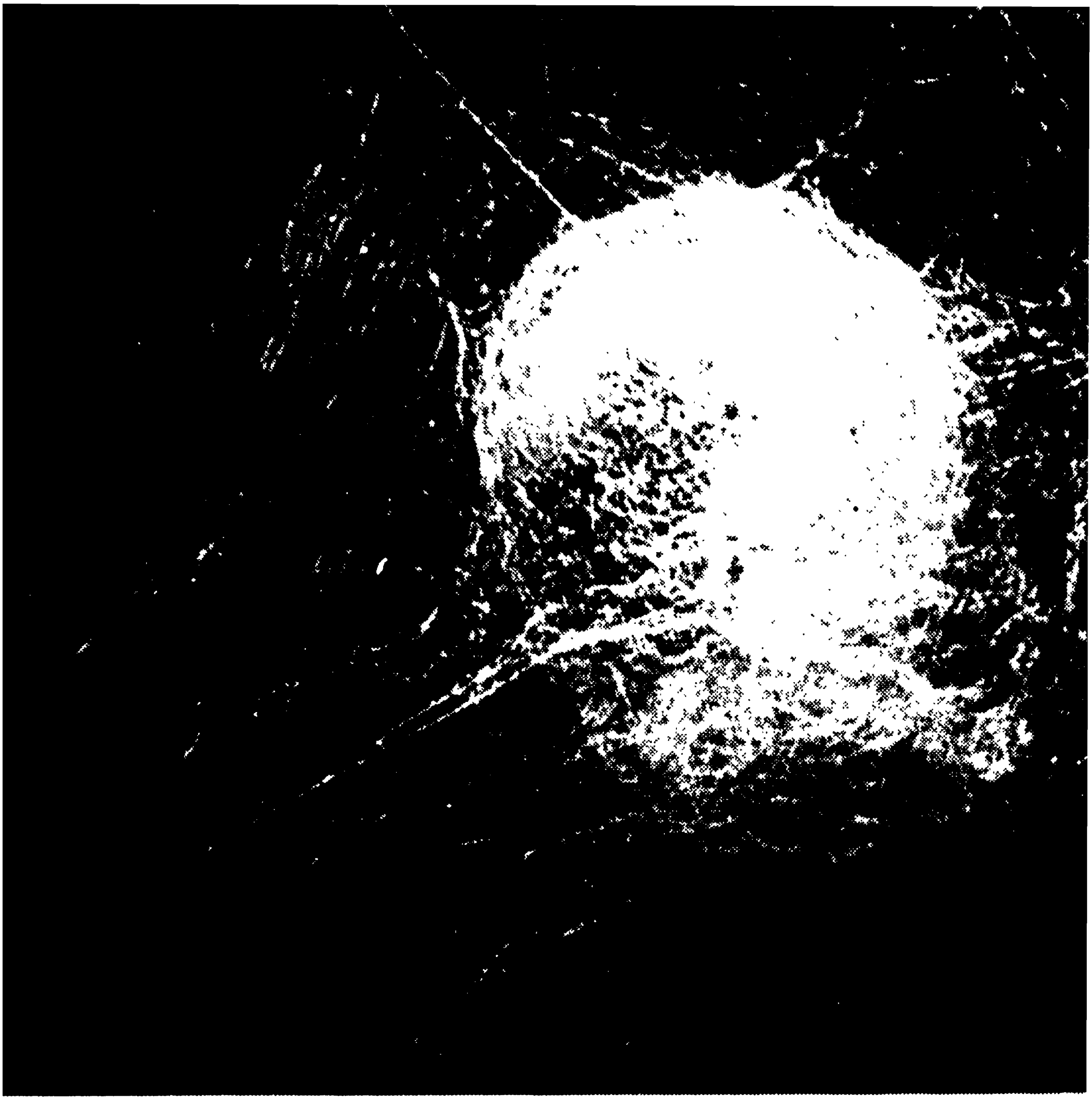

सुशील जोशी

काया बदलते कीट – अंडे से लार्वा निकला, कुछ समय बाद एक शंखी में बदल गया, और फिर बाहरी आवरण फटा और अपने पंखों को झाड़ती एक तितली निकल आई। जीवविज्ञान में इस प्रक्रिया को कायांतरण कहते हैं। यकायक होने वाले इन परिवर्तनों के दौरान एक जीव पूरी तरह नष्ट हो जाता है और बनने वाला जीव उससे बिल्कुल जुदा होता है, एकदम फर्क।

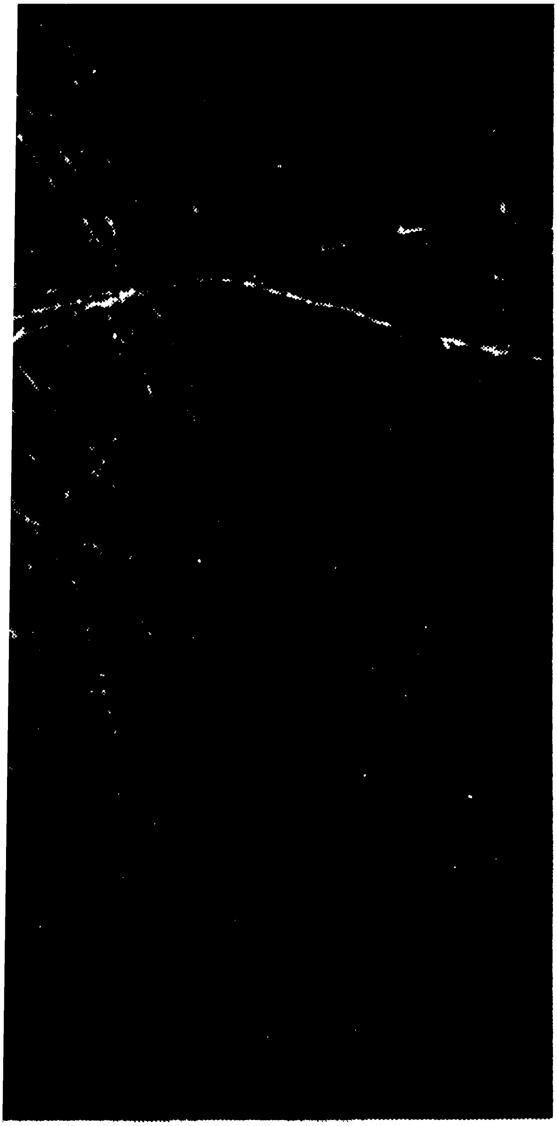

कोसे का ककून: लार्वा ने चमकीले बारीक तार बुन कर अपने चारों ओर खोल बना लिया है। इसी ककून को उबालकर इन तारों से रेशम का धागा बनता है। यही कोसा है – जिससे बने कपड़े काफी मंहगे होते हैं।

कायांतरण तो सब लोग जानते हैं। यह कई जन्तुओं के जीवन चक्र में होने वाली एक अनोखी प्रक्रिया है। कीट वर्ग के जंतुओं में तो यह आमतौर पर देखी जाती है। साथ ही मेंढक आदि जंतुओं में भी इस प्रक्रिया के दर्शन होते हैं।

जिन लोगों ने मक्खी, मच्छर या तितली वगैरह के जीवन-चक्र का अध्ययन किया है वे अवश्य ही इससे चमत्कृत हुए होंगे। मुझे तो यह अत्यन्त चमत्कारिक या शायद जादुई लगता है – मक्खी अण्डे देती है, उनमें से मक्खी नहीं निकलती बल्कि इल्ली निकलती है। इल्ली इधर-उधर मंडराती रहती है। फिर अचानक वह सुस्त पड़ने लगती है और उसके बाद एक खोल में बंद हो जाती है। इसे हम शंखी कहते हैं। एक-दो दिन बाद इस शंखी की खोल को फोड़कर इसमें से निकल आती है एक मक्खी।

इसी प्रकार से तितली के अण्डे में से भी इल्ली निकलती है, और उससे शंखी बनती है, और शंखी से तितली।

मूलत: कायांतरण कीट वर्ग के जंतुओं की ही विशेषता लगती है इसलिए मैं यहां अपनी बात को इसी वर्ग तक सीमित रखता हूं। एक और बात स्पष्ट कर देना लाज़मी समझता हूं। कायांतरण की यह प्रक्रिया हालांकि

मेरी दिलचस्पी का विषय रही है मगर मैंने इसके बारे में विस्तार से हाल ही में पढ़ा है और वही प्रस्तुत कर रहा हूं। इसे आप एक शुरुआती टटोलन के रूप में ही लें। हो सकता है आप इसमें कुछ कुछ जोड़ना चाहें। यदि ऐसा होगा तो यह बातचीत समृद्ध होगी।

परिवर्तन हुआ यकायक

सबसे पहला सवाल आता है कि कायांतरण कहते किसे हैं। सभी जंतुओं में परिवर्धन (Development) की प्रक्रिया तो होती है। फिर कायांतरण को अलग से क्यों देखा जाए? जहां तक मैं समझ पाया हूं कायांतरण परिवर्धन की वह प्रक्रिया है जिसमें निरंतरता न हो। यकायक होने वाले परिवर्धन को कायांतरण कह सकते हैं। मसलन किसी बकरी को लीजिए। पैदा होने के बाद उसमें परिवर्धन तो होता है मगर ऐसा नहीं होता कि किसी अवस्था के बाद आप उसे पहचान ही न पाएं। दूसरी ओर मक्खी की इल्ली अवस्था, पूर्ण वयस्क मक्खी से इतनी अलग होती है कि कई लोग इन्हें दो अलग-अलग जंतु मानने की भूल कर बैठते हैं।

तो कायांतरण को हम यकायक होने वाला 'निरंतरता विहीन परिवर्धन' कह सकते हैं। इसे परिभाषा के रूप में मत लीजिए। यह एक समझ है और आगे हम देखेंगे कि इस समझ में कायापलट की ज़रूरत पड़ेगी।

दूसरी बात है कि कायांतरण होता क्यों है? जहां तक मुझे समझ में आया है, इस सवाल का जवाब यही है कि हम नहीं जानते कि कायांतरण क्यों होता है। लेकिन हम काफी विस्तार में जानते हैं कि यह प्रक्रिया कैसे होती है। हम यह भी जानते हैं कि इल्ली व वयस्क में कितने स्पष्ट अंतर होते हैं। इल्ली और वयस्क मक्खी की रचना में तो अंतर होते ही हैं, साथ में उनके रहन-सहन, भोजन आदि में भी व्यापक अंतर होते हैं। अतः हम इसी सवाल पर चर्चा करेंगे कि कायांतरण कैसे होता है। हां, यह बात हम ज़रूर कर सकते हैं कि कायांतरण की प्रक्रिया के कारण कीटों को किस तरह के 'लाभ' प्राप्त होते हैं।

उदाहरण के लिए मच्छर की इल्ली (लार्वा) को देखिए। वह पानी में रहता है, *प्लांक्टन* खाता है। दूसरी ओर मच्छर धरती पर रहता है, सड़ी-गली चीज़ों का रस चूसता है (और कभी-कभी हमारा खून पीता है)। यानी एक ही जीव द्वारा दो सर्वथा अलग-अलग प्राकृतवासों और दो किस्म के भोजन का उपयोग कर पाने की वजह से इन जीवों की उत्तरजीविता (Survival) पर अनुकूल परिणाम पड़ता है। परंतु कुछ लोग इसका अर्थ यह लगा लेते हैं कि कायांतरण का प्रादुर्भाव इसी कारण से हुआ है। यह तर्क अनुचित है।

कायांतरण की शुरुआत पता नहीं किस कारण से, किन परिस्थितियों में हुई थी।

कंकाल के ऊपर कंकाल

कीट वर्ग के जंतुओं में कई अनूठी चीज़ें होती हैं। उनमें से एक अनूठी चीज़ है बाह्य कंकाल (एक्सो स्केलेटन)। हमारा कंकाल शरीर के अंदर होता है। यह कंकाल एक कठोर ढांचा बनाता है जिसके आसपास शरीर लिपटा होता है। मगर कीटों में यह कंकाल शरीर के बाहर होता है। यह भी कठोर होता है। इसमें लचीलापन नहीं होता। पूरा शरीर इसके अंदर कैद होता है। इसलिए एक मर्तबा कंकाल बन जाने के बाद कीटों की वृद्धि रुक जाती है। यदि वृद्धि होती है तो इस कंकाल को हटाकर नया (बड़ा) कंकाल बनाना होगा। कीटों में यह क्रिया होती रहती है। टिड्डा जब पैदा होता है तो वयस्क के समान ही दिखता है मगर छोटा होता है। फिर कुछ समय बाद वह यह चोला बदलता है, यानी अपने बाह्य कंकाल को उतार फेंकता है तथा एक नया कंकाल बना लेता है जो पहले से बड़ा होता है। इसलिए अगर आप टिड्डों का लगातार अवलोकन कर पाएं तो भी वे आपको धीर-धीरे बढ़ते हुए नहीं दिखेंगे – वे हर बार यकायक बड़े हो जाएंगे। चोला बदलने की इस क्रिया को *मोल्टिंग* कहते हैं।

आपका सवाल होगा कि मूल बाह्य कंकाल के अंदर बनने वाला नया कंकाल पहले से बड़ा कैसे हो सकता है। वास्तव में होता यह है कि अंदर का कंकाल नरम व लचीला होता है। जो अंग बड़े हो गए हैं वे अंदर दबे-कुचले पड़े होते हैं। अब कीट हवा खींचकर अपने आपको फुला लेता है। चूंकि नया कंकाल लचीला है, इसलिए वह फूल कर बड़ा हो जाता है। इस प्रक्रिया में पुराना कंकाल फेंक दिया जाता है। जैसे ही नया कंकाल हवा के संपर्क में आता है, वह कठोर हो जाता है। अब इसे और नहीं फुलाया जा सकता।

तो बाह्य कंकाल की उपस्थिति के चलते यकायक परिवर्तन एक आवश्यकता बन जाता है। दरअसल *मोल्टिंग* और कायांतरण आपस में जुड़ी हुई दो प्रक्रियाएं हैं। जिन कीटों में शंखी नामक सुस्त अवस्था होती है उनमें इसे पूर्ण कायांतरण कहते हैं। यदि जीवन-चक्र में शंखी न हो, इल्ली से सीधे कीट बने तो इसे अपूर्ण कायांतरण कहते हैं।

कायांतरण के कदम

अब देखते हैं कि कायांतरण होता कैसे है। हम पूर्ण कायांतरण का उदाहरण लेकर बात कर रहे हैं। अण्डे से इल्ली पैदा होती है। आमतौर पर इल्ली बेलनाकार होती है। शरीर छल्लों में बंटा होता है। कुछ इल्लियों में स्पर्शक

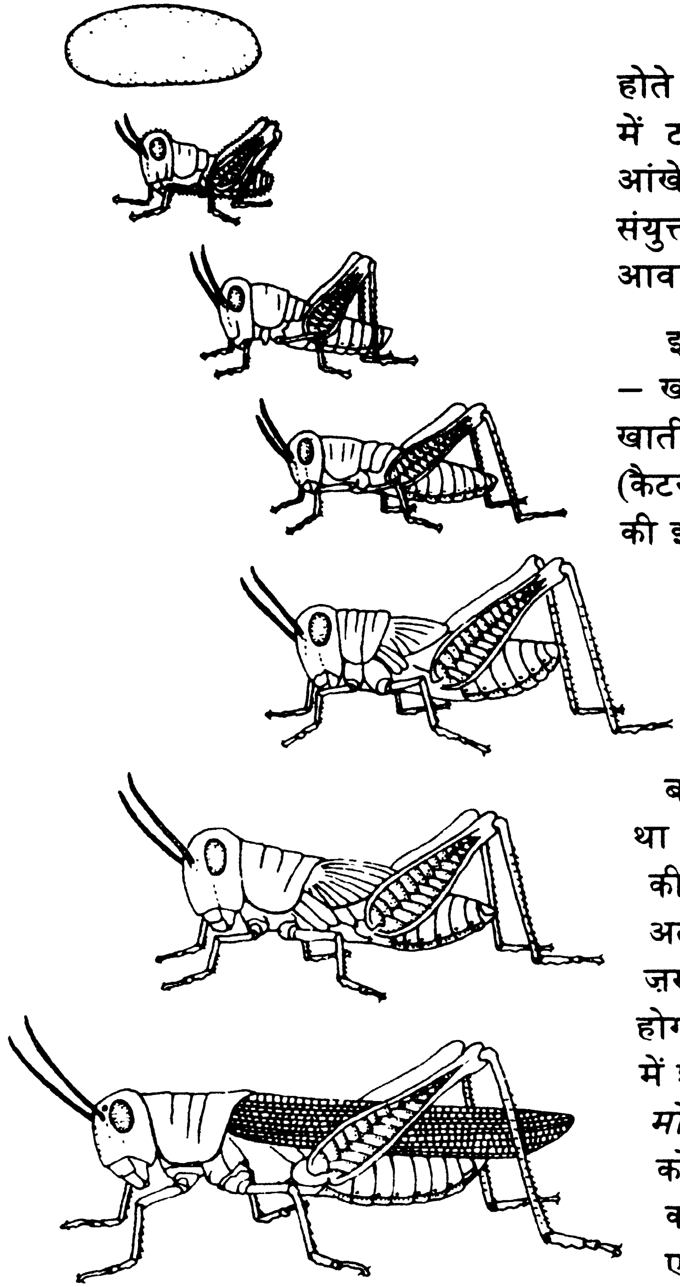

अपूर्ण कायांतरण: अंडे से निकलने के बाद अगर कीट अपने वयस्क की तरह ही दिखता है, और प्यूपा की अवस्था से नहीं गुज़रता तो इस कायांतरण को अपूर्ण मानते हैं; जैसे कि टिड्डे में।

होते हैं, तो कुछ में नहीं। कुछ इल्लियों में टांगे होती हैं तो कुछ में नहीं। आंखें सरल होती हैं, वयस्क की तरह संयुक्त नहीं होती। शरीर पर कठोर आवरण (बाह्य कंकाल) होता है।

इल्लियों का एक ही काम होता है – खाना; वे खूब खाती हैं। लगातार खाती रहती हैं। तितलियों की इल्लियां (कैटरपिलर) पत्तियां खाती हैं, मक्खियों की इल्लियां सड़े गले पदार्थ खाती हैं।

आपने शायद ध्यान दिया होगा कि मक्खी की इल्ली अण्डे में से निकलने के समय काफी छोटी होती है। खा-खाकर यह बड़ी हो जाती है। ऊपर मैंने बताया था कि बाह्यकंकाल के कारण इल्ली की वृद्धि की भी सीमा होती है। अतः यदि इल्ली बड़ी हो रही है तो ज़रूर उसमें *मोल्टिंग* की क्रिया होती होगी। दरअसल मक्खी और मच्छर में शंखी बनने से पूर्व इल्ली एक बार *मोल्टिंग* करती है। इन अवस्थाओं को इल्ली प्रथम और इल्ली द्वितीय कहा जाता है। तितिलियों में तो एक-के-बाद-एक चार इल्ली अवस्थाएं होती हैं। किंतु इनकी बुनियादी रचना में कोई फर्क नहीं होता, सिर्फ आकार व वज़न में अंतर होता है।

कुछ कीटों (खास तौर से परजीवी कीटों) में इल्ली की विभिन्न अवस्थाएं एक-दूसरे से काफी भिन्न होती हैं।

एक स्थिति ऐसी आती है जब इल्ली सुस्त पड़ने लगती है। धीरे-धीरे वह बिल्कुल निष्क्रिय होकर प्यूपा में बदल जाती है। जीव वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि प्यूपा वास्तव में इल्ली और वयस्क के बीच कड़ी के समान है। शंखी चूंकि प्रायः पूरी तरह निष्क्रिय होती है इसलिए इस पर काफी खतरा होता है कि कोई शिकारी इसे खा जाएगा। किंतु लगभग सभी कीटों में शंखी को खुला नहीं छोड़ा जाता। इल्ली शंखी में तब्दील होने से पूर्व अपने इर्द-गिर्द एक खोल (आवरण) बना लेती है। यह खोल (प्यूपाघर या प्यूपेरियम) कई तरह का होता है।

इस प्यूपाघर के अंदर कायांतरण का चमत्कार शुरू होता है। इसके चलते अंदर ही अंदर प्यूपा इतने रूप बदलता है कि उसे लार्वा-प्यूपा और प्यूपा-वयस्क जैसी अवस्थाओं के नाम दिए गए हैं।

एक जीव, दूसरा जीव

आमतौर पर कायांतरण को लेकर ऐसे सवाल पूछे जाते हैं कि इल्ली के कौन से अंग से विकसित होकर वयस्क का कौन-सा अंग बनेगा। दरअसल यह सवाल ही भ्रामक है – खासकर कीट-कायांतरण के संदर्भ में। आपको यह जानकर शायद अचरज होगा कि एकाध अंग के अपवाद को छोड़ दें, तो कायांतरण के दौरान पूरी इल्ली नष्ट

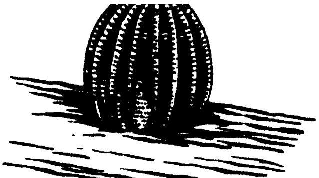

अंडे

लार्वा (इल्ली)

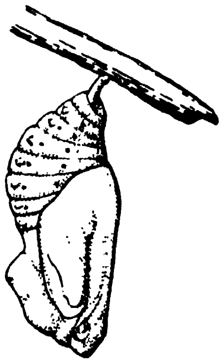

प्यूपा (शंखी)

वयस्क

पूर्ण कायांतरणः यदि अंडे से निकला जीव पूर्ण वयस्क से बिल्कुल भिन्न दिखता है और यदि यह लार्वा, प्यूपा की अवस्था से गुज़रता है तो इस कायांतरण को पूर्ण कायांतरण कहा जाता है।

1.

4.

2.

3.

5.

6.

7.

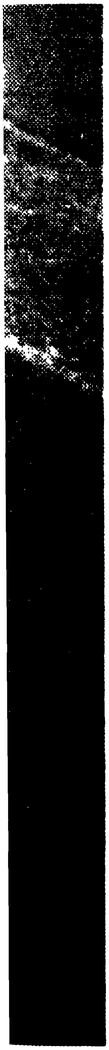

इन दो पृष्ठों पर दिए गए चित्र मोनार्क तितली के विकास की अलग-अलग अवस्थाओं के हैं जिसमें पूर्ण कायांतरण होता है: 1. अंडा 2. इस अंडे से निकला छोटा-सा लार्वा जो मोल्टिंग की प्रक्रिया से गुज़रता हुआ बड़ा होता जाता है 3. वयस्क लार्वा 4. यह वयस्क लार्वा पौधे के किसी हिस्से से जुड़ जाता है और प्यूपा बनने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है ... (अगले पेज पर)

8.

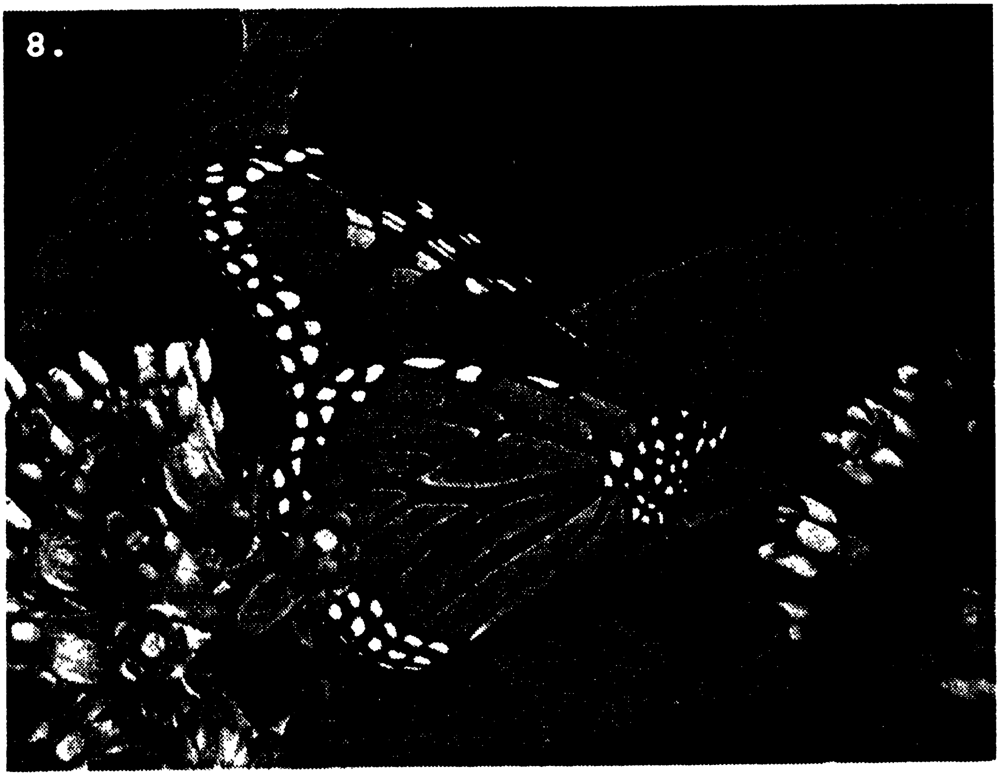

हो जाती है और उसके मलबे का उपयोग वयस्क शरीर के निर्माण में किया जाता है। हम प्राय: सोचते हैं कि कायांतरण के दौरान इल्ली के शरीर पर कुछ नए अंग बनते हैं। सच्चाई यह है कि कायांतरण के दौरान लगभग सारे अंग नए बनते हैं। एक अर्थ में इल्ली और वयस्क दो अलग-अलग जीव हैं।

ऊपर से दिखने वाले अंतरों पर ध्यान दीजिए। कई कीटों की वयस्क अवस्था में पंख होते हैं जबकि इल्ली में पंख नहीं होते। इल्लियों और वयस्कों में मुख्य अंगों में बुनियादी अंतर होते हैं। इल्लियों की आखें सरल होती हैं, वयस्क की आंखें संयुक्त आखें होती हैं। इल्लियों और वयस्कों में टांगों की संख्या तथा स्थान के अंतर होते हैं। रंग में तो अंतर होते ही हैं।

अब ज़रा आंतरिक रचना पर गौर करें। इल्ली और वयस्क के बीच मांस-पेशियों में व्यापक अंतर होते हैं। चूंकि कायांतरण के बाद कीट के भोजन में बुनियादी परिवर्तन होते हैं इसलिए इल्ली और वयस्क कीट की आहार नाल में भी व्यापक अंतर नज़र आते हैं।

हां, श्वसन तंत्र में सिर्फ नई शाखाएं बनती हैं। परंतु मक्खी वर्ग में तो श्वसन तंत्र का भी पुनर्निर्माण होता है। इसी प्रकार से जलचर इल्ली से बनने वाले मच्छरों में श्वसन तंत्र में व्यापक बदलाव होते हैं। इसी प्रकार से रक्त परिवहन तंत्र में भी ज़्यादा बदलाव नहीं होते। किंतु तंत्रिका तंत्र का काफी हद तक पुनर्गठन होता है।

उपरोक्त संरचना-गत परिवर्तनों के अलावा जैव-रासायनिक परिवर्तन भी होते हैं। वयस्क जीवन के लिए नए एन्ज़ाइमों की, नए प्रोटीनों की ज़रूरत होती है जो इल्ली के लिए ज़रूरी नहीं थे। इनका निर्माण शुरू होता है। इनके अलावा अन्य रासायनिक परिवर्तन भी देखे गए हैं।

यहां हम इनमें से प्रत्येक परिवर्तन के विस्तार में तो नहीं जाएंगे, मगर यह तो साफ हो जाता है कि इल्ली की शरीर रचना तथा शरीर क्रिया वयस्क से बहुत भिन्न होती है। नई शरीर रचना बनाने के लिए कई तरह की प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है:

1. इल्ली की कोई रचना वैसी की वैसी वयस्क में बनी रह सकती है,

5. इसमें लार्वा अपने चारों ओर एक खोल बना लेता है। प्यूपा की अवस्था में लार्वा का पूरी तरह रूपांतरण हो जाता है। 6. कई कीटों में प्यूपा की अवस्था के अंतिम समय में खोल पारदर्शी हो जाता है जिससे कीट के अंगों को बाहर से देखा जा सकता है जैसे इस चित्र में तितली के पंख दिखाई दे रहे हैं। 7. शंखी से बाहर निकली नई-नई तितली थोड़ी देर वहीं बैठी रहती है, अपने पंखों को खोलने के लिए। 8. इसके बाद उड़ जाती है फूलों का मकरंद चूसने, समागम करने और . . .

जैसे कि उदर की मांसपेशियां।

2. इल्ली की कुछ रचनाएं नष्ट हो जाती हैं और उनके स्थान पर कोई नई रचना नहीं बनती।

3. इल्ली की कुछ रचनाएं पूरी तरह नष्ट हो जाती हैं और उनके स्थान पर नई रचनाएं बन जाती हैं।

4. इल्ली में अनुपस्थित हों, ऐसी नई रचनाओं का निर्माण होता है।

अब आपको स्पष्ट हो गया होगा कि कायांतरण सामान्य परिवर्धन नहीं है। ऐसा कहते हैं कि कायांतरण की प्रक्रिया के दरम्यान एक अवस्था ऐसी आती है जब वह जीव न तो इल्ली होता है, न वयस्क – वह तो अधिकतर मलबा होता है। खैर!

सवाल तो यह है कि ये नई रचनाएं बनने, पुरानी रचनाओं के नष्ट होने का काम होता कैसे है? कौन-सी कोशिकाएं नए सिरे से सक्रिय होकर नए अंग बनाती हैं; कौन-सी कोशिकाएं पुराने अंगों का सफाया करती हैं। और इस प्रक्रिया का नियंत्रण कैसे होता है?

दरअसल यहां एक बात को मोटे तौर पर समझ लेना होगा। सजीवों की अधिकांश शरीर रचना या अंग दरअसल त्वचा की सलवटें हैं। जैसे त्वचा को अंदर की ओर धंसाइए और धंसाते-धंसाते त्वचा को किसी अन्य स्थान से जोड़ दीजिए। बन गई आहार नाल। यह इस प्रक्रिया का सरलीकृत प्रस्तुतिकरण है। संक्षेप में कहें, तो सारा खेल त्वचा का है।

सवाल यह उठता है कि इल्ली की त्वचा में ऐसी क्या बात है कि एक समय तक वह एक तरह से सलवटें लेकर अंगों का एक समूह बनाती है और फिर समय आने पर नई तरह की सलवटों से नए अंग बनाती है।

'बिन्दुओं' में छुपा नया जीव

वास्तव में इल्ली की त्वचा पर शुरू से ही कुछ बिंदु होते हैं। इन्हें 'इमैजिनल डिस्क' कहा जाता है। यह नाम 'इमैगो' से बना है – इमैगो कीटों के वयस्क को कहा जाता है। ये इमैजिनल डिस्क (वयस्क बिंदु) इल्ली की शेष त्वचा से थोड़े अलग होते हैं। जब बाकी की त्वचा विभाजन करके बढ़ रही होती है तो ये वैसे ही पड़े रहते हैं। इल्ली के शरीर में जो हार्मोन या एन्ज़ाइम बनते हैं उनका असर भी वयस्क बिंदुओं की कोशिकाओं पर नहीं होता, या अलग ढंग से होता है। त्वचा के ये हिस्से बाह्य कंकाल से भी नहीं जुड़े होते। यानी इल्ली की वृद्धि व विकास इनसे स्वतंत्र होता रहता है। ये इमैजिनल डिस्क या वयस्क बिंदु ही वयस्क कीट का निर्माण करते हैं। इस प्रक्रिया का नियंत्रण कैसे होता है, यह हम थोड़ी देर बाद देखते हैं।

इल्ली के विकास की किसी अवस्था

पर एक मुकाम ऐसा आता है जब ये 'वयस्क बिंदु' अचानक सक्रिय होने लगते हैं। यही अवस्था प्यूपा निर्माण की होती है। प्यूपा बनने का अर्थ है कि 'वयस्क बिंदु' सक्रिय हो चुके हैं तथा नए अंगों (खासकर पंखों) का निर्माण शुरू हो चुका है। जब इनके लिए जगह कम पड़ने लगती है तो इल्ली आखिरी बार *मोल्टिंग* करती है। इसके बाद तो उसका खात्मा ही होना है। अब शायद आप समझ गए होंगे कि प्यूपा निष्क्रिय क्यों होता है। सभी 'वयस्क बिंदु' सक्रिय होकर अपना काम करने लगते हैं। शरीर में ऐसे एन्ज़ाइम बनने लगते हैं जो इल्ली की मांसपेशियों का तथा अन्य ऊतकों का विघटन शुरू कर देते हैं। विघटन से बने पदार्थों को भक्षी कोशिकाएं चट कर जाती हैं। काफी पदार्थों का उपयोग वयस्क के शरीर को बनाने में हो जाता है। उत्सर्जन योग्य पदार्थों को शरीर में ही जमा करके रखा जाता है।

जब वयस्क का निर्माण पूरा हो जाता है तो उसके ऊपर एक नई त्वचा तथा लचीला कंकाल भी बन जाता है। यह भी 'इमैजिनल डिस्क' से होता है। सारे नए अंग सिकुड़ी हुई अवस्था में इस लचीले कंकाल के अंदर हैं। प्यूपा की त्वचा में ऐसे स्थान होते हैं जो कमज़ोर होते हैं। जब वयस्क कीट अपने आपको फुलाता है तो प्यूपा की त्वचा इन कमज़ोर स्थानों से टूट जाती है और कीट बाहर आ जाता है। अभी उसे प्यूपाघर से बाहर आना शेष है। कीट अपने आपको फुलाता है और पंखों में रक्त प्रवाह बढ़ाता है ताकि वे फैल जाएं। इस तरह वयस्क कीट प्यूपाघर को तोड़कर बाहर आ जाता है। हवा के संपर्क में आकर कीट का बाह्य आवरण कड़ा हो जाता है। अब यह जीवन भर और बड़ा नहीं होगा। कीट प्रायः जिस साइज़ में जन्म लेते हैं उसी साइज़ में मरते हैं।

उपरोक्त प्रक्रिया से एक मज़ेदार बात पता चलती है। वह बात यह है कि अण्डे से जब इल्ली बनती है तो उसकी कोशिकाओं में इल्ली बनने तथा वयस्क बनने की पूरी अनुवांशिक सूचना होती है। यह सूचना वयस्क बिंदुओं (इमैजिनल डिस्क) की कोशिकाओं में भी होती है। जीवविज्ञान की तकनीकी भाषा में हम कहते हैं कि सभी कोशिकाओं में एक ही डी. एन. ए. मौजूद होता है। मगर जहां शेष सारी कोशिकाएं इल्ली निर्माण करती हैं वहीं 'वयस्क बिंदु' कोशिकाएं इनसे अलग-थलग उचित मौके का इंतज़ार करती रहती हैं। अर्थात ये वास्तव में वयस्क कीट का प्रतिनिधित्व करती हैं। यानी 'वयस्क बिंदु' इल्ली के शरीर में वयस्क टापू हैं। हम कहेंगे कि इनका विभेदन हो चुका है अब सिर्फ इस विभेदित सम्भावना को विस्तार देना बाकी है। कौन बताता है इन्हें कि अब 'उचित

अवसर' आ गया है।

काफी ऊटपटांग प्रयोगों के बाद जीव वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि कीटों के शरीर में पाई जाने वाली एक ग्रंथि 'कॉर्पस एलेटम' होती है। यह ग्रंथि एक हॉर्मोन या हॉर्मोन समूह का स्त्राव करती है। इसे 'शैशव हॉर्मोन' या 'जुवेनाइल हॉर्मोन' का नाम दिया गया है। इस हॉर्मोन की मात्रा से कायांतरण का नियंत्रण होता है। वैसे यह हॉर्मोन कई अन्य बातों का भी नियंत्रण करता है।

जब तक कॉर्पस एलेटम भरपूर मात्रा में 'शैशव हॉर्मोन' का स्त्राव करती रहती है, तब तक इल्ली अवस्था ही बनी रहती है। मोल्टिंग तो अपनी रफ्तार से चलता रहता है मगर इल्ली, प्यूपा नहीं बनती। अंतिम इल्ली अवस्था के दौरान कॉपर्स एलेटम को मस्तिष्क से संदेश प्राप्त होता है और इसके परिणामस्वरूप कॉर्पस एलेटम अपना स्त्राव कम कर देती है। जब शरीर में हॉर्मोन कम मात्रा में होता है तो प्यूपा बनता है। प्यूपा में यह ग्रंथि अपना स्त्राव बंद कर देती है, तब वयस्क बनता है। (यहां यह कह देना ज़रूरी है कि वयस्क कीटों में एक मर्तबा फिर कॉर्पस एलेटम सक्रिय होती है मगर यह 'शैशव हॉर्मोन' नहीं बनाती।)

शैशव हॉर्मोन की भूमिका काफी निर्णायक है। जब तक यह एक निश्चित मात्रा से ज्यादा उपस्थित है तब तक इल्ली अवस्था ही बनी रहती है। यदि किसी इल्ली को लगातार शैशव हॉर्मोन की खुराक दी जाए तो वह कई मर्तबा मोल्टिंग के बावजूद वयस्क में परिवर्तित नहीं होती। हां, उसकी साइज़ ज़रूर बढ़ती जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि शैशव हॉर्मोन की संरचना सभी कीटों में एक जैसी है। एक प्रजाति की इल्ली का शैशव हॉर्मोन दूसरी प्रजाति की इल्ली को दिया जाए तो असरकारक होता है। यानी वह इल्ली, इल्ली अवस्था में ही बनी रहती है।

सबसे रोचक बात यह है कि यदि वयस्क कीट के शरीर में 'शैशव कॉर्पस एलेटम' प्रत्यारोपित कर दी जाए और उसे मोल्टिंग करने पर मजबूर किया जाए तो उसमें कुछ इल्लीनुमा लक्षण फिर से उभर आते हैं। यानी जिस प्रकार से इल्ली में एक वयस्क कीट मौजूद था, उसी प्रकार से वयस्क कीट में एक इल्ली मौजूद रहती है। अभी तो कायांतरण के बारे में और बहुत कुछ है। मगर एक-एक बात के विस्तार में जाया नहीं जा सकता। आपके दिमाग में कई सवाल ज़रूर उठे होंगे। कृपया लिखिए, ताकि बातचीत आगे बढ़े।

सुशील जोशी: स्वतंत्र रूप से विज्ञान एवं पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर लेखन और अनुवाद के काम में सक्रिय; एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम एवं विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी पर केंद्रित फीचर सर्विस 'स्रोत' से संबद्ध।

सिकाडा किलर्स लार्वा और वयस्क का अलग-अलग व्यवहार

किशोर पंवार

कीटों की दुनिया काफी निराली है। इनमें कई सामाजिक कीट हैं जैसे चींटियां, दीमक और मधु-मक्खियां; जिनकी अपनी एक काबिले तारीफ व्यवस्था है। एक भरा पूरा परिवार जिसका मुखिया मानव समाज की तरह पुरुष न होकर मादा होती है। रानी के इस साम्राज्य में सेवक और सैनिक सभी होते हैं। सभी बेहद अनुशासित और समर्पित, अराजकता की कोई गुंजाइश नहीं।

कीटों की इसी दुनिया का ही एक बाशिंदा है 'सिकाडा किलर'। सिकाडा और सिकाडा किलर दोनों बड़े रोचक जीव हैं। यह वर्ष सिकाडा वर्ष है। पिछले अंक में आपने सिकाडा के बारे में पढ़ा था जो 13 या 17 साल में एक बार एक साथ लाखों की तादाद में निकलते हैं। परंतु इन सिकाडा से ज़्यादा रोचक है सिकाडा किलर का व्यवहार।

सिकाडा किलर्स

ततैया की सैंकड़ों जातियों में से, जो अपने शिशुओं को खिलाने के लिए शिकार करती हैं, सबसे ज़्यादा रोचक है सेंड वेस्प – *स्फीसियस स्पीसिओसस* यानी 'सिकाडा किलर'।

जब मादा सिकाडा किलर अपने ककून से बाहर आती है तो खुद को एक अंधेरी दुनिया में ज़मीन के अंदर पाती है। यह अंधेरी सुरंग 30-40 इंच लंबी सुरंग का एक हिस्सा होती है और ज़मीन से तकरीबन चार इंच अंदर होती है।

गर्मी के किसी दिन धूप में यह मादा पहली बार इस सुरंग से बाहर

निकलती है। पहली उड़ान में ही इसकी मुलाकात नर से हो जाती है, जो उससे पहले ही बाहर आ चुका होता है। यहां उनका मिलन होता है।

मादा 'सिकाडा किलर' शायद ही कभी दूसरी बार समागम करती है। वह पहले समागम के दौरान एकत्र किए शुक्राणुओं का अगले तीस या उससे अधिक दिनों तक उपयोग करती रहती है।

जल्दी ही यह वैसी ही सुरंग खोदती है जिससे कि वह खुद बाहर निकली थी। खोदने में ये माहिर है इसलिए कुछ ही घंटों में अपना काम निपटा देती है। इस मेहनत भरे काम के लिए इसे फूलों के रस और पेड़ों के रस से मिलती है ऊर्जा। परंतु जैसे ही सुरंग पूरी होती है भोजन की इसकी चाह बदल जाती है और अचानक वह फूल पत्तियों के रस की बजाए सिकाडा की खोज में निकल पडती है।

ऐसा लगता है कि सिकाडा की तलाश वह यूं ही हर कहीं नहीं करती। वह उन संभव स्थानों यानी उन पेड़ों के पास जाती है और उनके चारों ओर चक्कर लगाती है, जहां सिकाडा के मिलने की संभावनाएं ज़्यादा हों। मादा 'सिकाडा किलर' पेड़ के तने से कुछ इंच ऊपर उठती है और काफी व्यवस्थित तरीके से आगे बढ़ती है। जैसे ही उसे सिकाडा मिलता है वह उस पर तेज़ी से आक्रमण कर दंशक से उसके शरीर में ज़हर घुसा देती है। इस विष के असर से शिकार बेहोश हो जाता है, पर मरता नहीं है। इस बेहोशी की अवस्था में सिकाडा लगभग एक सप्ताह तक पड़ा रहता है।

'सिकाडा किलर' जो एक तेज़ और सक्षम उड़ाका है, इसे उठाकर अपनी सुरंग की ओर चल देती है। उसकी मेहनत का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि सिकाडा का वज़न

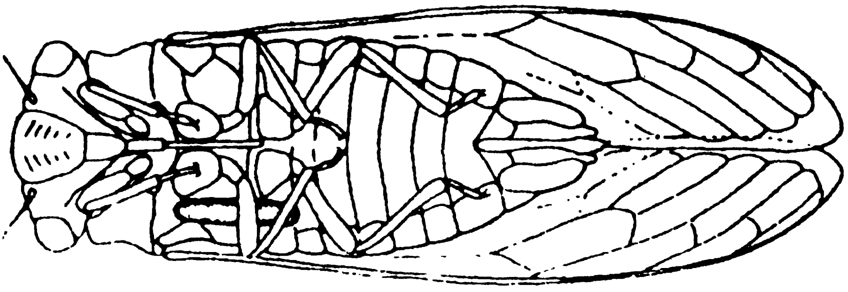

'सिकाडो किलर' द्वारा अपने दंशक से ज़हर घुसाकर बेहोश किया हुआ मादा सिकाडा। 'सिकाडा किलर' ने उसे पीठ के बल औंधा लिटाकर उसके पंजों के बीच अपना अंडा फंसा दिया है ताकि अंडे में से निकलने पर लार्वा को पर्याप्त भोजन मिलता रहे।

'सिकाडा किलर' से चार-छः गुना ज़्यादा होता है। सुरंग के नज़दीक पहुंचकर वह सिकाडा को घसीटकर सुरंग के किसी एक चेंबर में ले जाती है, और फिर उस पर अपना एक अण्डा देती है।

वेस्प यानी 'सिकाडा किलर' का यह व्यवहार बड़ा नपा-तुला होता है। सिकाडा को हमेशा पीठ के बल लिटाया जाता है, और अण्डे को हमेशा सिकाडा के पेट की तरफ एक निश्चित जगह पर रखा जाता है। यह सब होने पर वेस्प इस कोठरी को मिट्टी से बंद कर देती है, और फिर कभी नहीं खोलती।

कुछ ही दिनों में अण्डा फूटता है और उसमें से इल्ली निकलती है जिसके लिये शानदार दावत का इंतज़ाम मां द्वारा पहले से ही किया हुआ है। यह इल्ली ताज़े सिकाडा से अपना भोजन लेती है। निष्क्रिय अवस्था में होने से वह कोई प्रतिरोध भी नहीं कर पाता। इस तरह से 'सिकाडा किलर' बढ़ता रहता है जब तक कि यह अपना ककून नहीं बुन लेता और प्यूपा नहीं बन जाता।

वेस्प का यह व्यवहार कई सवाल उठाता है। मादा के पैतृक व्यवहार में ऐसे भोजन को ढूंढना जो उसके खुद के भोजन से बिलकुल अलग है; अपने बच्चों को भविष्य में लगने वाली भोजन की भूख का पहले से ही अहसास; आदि। ऐसा कई अन्य कीटों में भी होता है। मां शाकाहारी और बच्चे मांसाहारी। मादा का ऐसा व्यवहार क्यों?

यदि यह प्रश्न इसलिए है कि वे कौन-से कारक हैं जो इस व्यवहार को नियंत्रित करते हैं तो जवाब है कि हम अब तक नहीं जानते। परंतु यदि सिकाडा और 'सिकाडा किलर' की विकास यात्रा का इतिहास जानना चाहते हैं तो इस रिश्ते पर कुछ रोशनी डाली जा सकती है। ये वयस्क ततैया जो मुख्य रूप से मकरकंद भक्षी है, ऐसे वेस्प से विकसित हुए हैं जिनके लार्वा और वयस्क दोनों मांसाहारी थे। विकास के इस दौर में वेस्प के लार्वा ने तो अपना पुराना भोजन नहीं छोड़ा परंतु वयस्कों ने एक नई दिशा ढूंढ ली जिसमें मकरंद, शक्कर का और परागकण, प्रोटीन का स्रोत हैं।

इसके लार्वा में इस पुरातन गुण के बचे रहने के कारण वयस्क मादा को इसके लिए वह भोजन तलाशना पड़ता है जिसे उसने स्वयं कभी नहीं खाया। इसी तरह का पैतृक व्यवहार कई पक्षियों में भी देखा गया है जिनके वयस्क तो बीज खाते हैं परंतु अपने नवजात बच्चों के लिए बड़ी संख्या में कीड़े पकड़ कर लाते हैं। ये पक्षी भी 'सिकाडा किलर' की तरह कीटभक्षी पक्षियों से विकसित हुए हैं।

किशोर पंवार: शासकीय महाविद्यालय सेंधवा, ज़िला बड़वानी में वनस्पति शास्त्र पढ़ाते हैं।

पुस्तक परिचय

आर्यभटीय

ाणित एवं खगोल की विवादित किताब

गुणाकर मुळे

आर्यभट ने आर्यभटीय में पृथ्वी के बारे में जो तथ्य रखे वे उस समय की धार्मिक मान्यताओं के विपरीत थे। इसलिए तत्कालीन ज्योतिषियों ने आर्यभटीय की पांडुलिपियों के साथ तथ्यात्मक तोड़-मरोड़ शुरू कर दी। कितना कठिन होता है लोगों की सोच में किसी भी प्रकार का परिवर्तन ला पाना। आर्यभटीय सिर्फ खगोल की चर्चा तक ही सीमित नहीं है, इसमें गणित के भी कई पहलू उभारे गए हैं।

1
गीतिकापाद

भारत में बहुत प्राचीन काल से संख्याओं के लिए शब्दों का प्रयोग होता रहा है, जैसे, चंद्र = 1, कर्ण = 2, गुण = 3 आदि। ईसा की पहली या दूसरी सदी में भारत में शून्ययुक्त दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति की खोज हुई। अर्थात ऐसी पद्धति जिसमें शून्य का इस्तेमाल होता हो, जिसका दस का आधार हो और जिसमें इस्तेमाल होने वाले संकेतों का मान उनके स्थान पर निर्भर करता हो। फिर उसके बाद पद्यबद्ध ग्रंथों में भी स्थानमान के शब्दों का प्रयोग शुरू हुआ। तत्पश्चात जब देखा गया कि शब्दांकों (अंकों को दर्शाने वाले शब्द)

की स्थापना दाईं ओर से बाईं ओर करते जाने में पद्य-रचना में सुविधा होती है, तब यह प्रथा शुरू हुई और नियम बना दिया गया : **अंकानां वामतो गतिः** यानी शब्दांक दाईं ओर से बाईं ओर चलते हैं। जैसे, खचतुष्क–रद–अर्णवाः का अर्थ होगा (ख यानी आकाश अर्थात शून्य – चतुष्क यानी चार – रद यानी दांत अर्थात 32 – अर्णवाः यानी समुद्र अर्थात 4); दाईं ओर से लिखते हुए चार शून्य, बत्तीस और फिर से चार – 4320000.

लघुता और संक्षिप्ता को पसंद करने वाले आर्यभट ने संख्याओं के लिए शब्दों के बजाए अक्षरों का उपयोग करने का निश्चय किया। संस्कृत व्याकरण के विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करके उन्होंने अपनी नई अक्षरांक पद्धति यानी अक्षरों से संख्याओं को व्यक्त करने की व्यवस्था के सारे नियम एक श्लोक में भर दिए :

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः।

खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा॥

आर्यभट की यह अक्षरांक पद्धति काफी जटिल है, इतनी कि इसमें कुछ अक्षर-संख्याओं का उच्चारण भी कर पाना संभव नहीं है। इसलिए इस पद्धति का उपयोग आर्यभट तक ही सीमित रह गया। यूनानी लोग भी अपनी वर्णमाला के अक्षरों से ही संख्याओं को व्यक्त करते थे। बहुत संभव है कि यूनानी अक्षरांकों को देखकर ही आर्यभट को अपनी अक्षरांक पद्धति की प्रेरणा मिली हो।

काल का मापन

ग्रंथ के आरंभ में ही अपनी नई अक्षरांक पद्धति को स्थापित कर देने के बाद आर्यभट अब ग्रहों की परिक्रमाओं की बड़ी-बड़ी संख्याओं को अत्यंत संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर देने में समर्थ थे। आर्यभट के अनुसार, एक युग (महायुग) में 4320000 बार पृथ्वी सूर्य का चक्कर (सूर्य-भगण) लगाती है, इसलिए युग में वर्ष भी इतने ही हैं। पृथ्वी भगण की संख्या वे 1582237500 देते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर एक युग में 1582237500 बार अपनी धुरी पर भ्रमण करती है। जैसा कि हमने पहले बताया है, भूभ्रमण का प्रतिपादन करने वाले आर्यभट पहले भारतीय ज्योतिषी थे। उन्होंने नाक्षत्र दिन का मान 23 घंटे 56 मिनट 4.1 सेकंड दिया है। आधुनिक मान 23 घंटे 56 मिनट 4.091 सेकंड है। आर्यभट के अनुसार, नाक्षत्र वर्ष 365.25868 दिनों का और चांद्र मास 27.32167 दिनों का था। आधुनिक गणना के अनुसार इनके क्रमशः मान हैं: 365.25636 दिन

आर्यभट की अक्षरांक पद्धति

एक ही श्लोक में वर्णित आर्यभट की अक्षरांक पद्धति अपने सरल रूप में इस प्रकार है :

अ	=1	लृ=100000000
इ	=100	ए=10000000000
उ	=10000	ऐ=1000000000000
ऋ	=1000000	ओ=100000000000000
औ	=10000000000000000	

क् = 1,	ख् = 2,	ग् = 3,	घ् = 4,	ङ् =5,
च् = 6,	छ् = 7,	ज् = 8,	झ् = 9,	ञ् = 10,
ट् = 11,	ठ् = 12,	ड् = 13,	ढ् = 14,	ण् = 15,
त् = 16,	थ् = 17,	द् = 18,	ध् = 19,	न् = 20,
प् = 21,	फ् = 22,	ब् = 23,	भ् = 24,	म् = 25,
य् = 30,	र् = 40,	ल् = 50,	व् = 60,	
श् = 70,	ष् = 80,	स् = 90,	ह् = 100,	

इस व्यवस्था में जहां व्यंजन के साथ स्वर मिला हो, वहां समझना चाहिए कि व्यंजनांक के साथ स्वरांक का गुणन हुआ। जैसे, कु = क् + उ = 1 × 10000 = 10000, और ङि = ङ् + इ = 5 × 100 = 500। ह्रस्व और दीर्घ स्वरों में कोई भेद नहीं किया गया है। जहां संयुक्त व्यंजन के साथ स्वर मिला हो, वहां समझना चाहिए कि वह स्वर उस संयुक्त व्यंजन के प्रत्येक घटक के साथ मिला हुआ है। जैसे, ख्षृ = (ख् + ऋ) + (ष् + ऋ) = (2 × 1000000) + (80 × 1000000) = 82000000. श्लोक के अनुसार य = ङ् + म् (ङ्मौ यः) = 5 + 25 = 30.

एक उदाहरण लीजिए : आर्यभट की मान्यता थी कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, इसलिए वे कहते हैं कि 'कु' यानी पृथ्वी पूर्व की ओर एक महायुग (= 4320000 वर्ष) में ङिशिबुण्लृख्षृ बार घूमती है।

ङि = ङ् + इ = 5 × 100 =	500
शि = श् + इ = 70 × 100 =	7000
बु = ब् + उ = 23 × 1000 =	230000
ण्लृ = ण् + लृ = 15 × 100000000 =	1500000000
ख्षृ = (ख् ष्) ऋ = (2 + 80) × 1000000 =	82000000
ङिशिबुण्लृख्षृ =	1582237500

और 27.32166 दिन।*

मनुस्मृति और सूर्य-सिद्धांत की युग-पद्धति, इसमें 14 मनु, एक मनु में 71 युग (चतुर्युग) और एक युग में 4320000 वर्ष होते हैं। साथ ही, मनुसंधियों की कल्पना करके एक कल्प (ब्रह्मा का एक दिन) में 1000 युग माने गए हैं। आगे युग या महायुग को चार छोटे युगों – कृत, त्रेता, द्वापर और कलि – में विभाजित करके इनकी कालावधियों को 4 : 3 : 2 : 1 के अनुपात में रखा गया, यानी इन्हें क्रमश: 1728000, 1296000, 864000 और 432000 वर्षों के बराबर माना गया है।

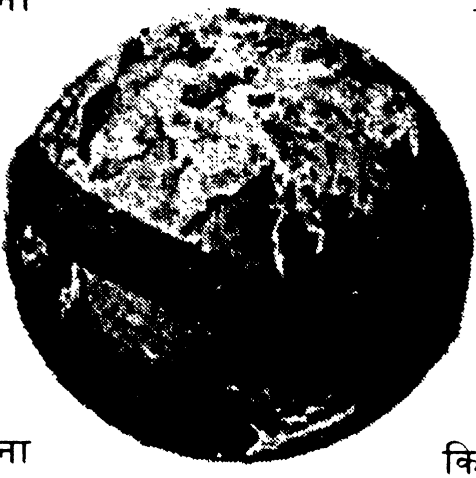

परन्तु आर्यभट ने इस कृत्रिम युग-पद्धति को स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार :

1 कल्प = 14 मनु या 1008 युग (महायुग) या 435456000 वर्ष

1 मनु = 72 युग

1 युग = 4320000 वर्ष

आर्यभट की इस युग-पद्धति में मनुसंधि के लिए कोई स्थान नहीं है। ब्रह्मांड के सृष्टिकाल को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। सृष्टि और प्रलय की मान्यताओं में उनकी आस्था नहीं थी। वे काल को अनादि और अनंत मानते थे (**कालोऽयमनाद्यन्त:**)। आर्यभट ब्रह्मा की आयु की भी बात नहीं करते।

आर्यभट ने भी युग (महायुग) को चार छोटे युगों (युगपादों) में विभक्त किया है। मगर ये युगपाद समान कालावधि के हैं, यानी प्रत्येक युगपाद 1080000 वर्षों का है। स्पष्ट है कि आर्यभट की यह युग पद्धति अधिक तर्क संगत है। उन्होंने कल्प और युग के आरंभ को किसी पार्थिव घटना के साथ नहीं जोड़ा है। उनके मतानुसार ये आकाश में ग्रहों की स्थितियों से संबंधित विशुद्ध गणित ज्योतिषीय

* नाक्षत्र वर्ष का मान वेदांग ज्योतिष में 366 दिन, वराहमिहिर द्वारा उल्लेखित पुराने सूर्य-सिद्धांत मे 365.25875 दिन, रोमक सिद्धांत में 365.2467 दिन और पैतामह सिद्धांत में 365.3569 दिन दिया गया है। नए सूर्य सिद्धांत में वर्ष का मान 365.258756 दिन है। तालेमी (150 ई.) ने नाक्षत्र वर्ष 365.24666 दिनों का और चांद्र मास 27.32167 दिनों का दिया है।

घटनाएं है।

आर्यभट ने भूभ्रमण का प्रतिपादन किया, इसलिए पृथ्वी-भगणों की संख्या दी। साथ ही, गीतिकापाद में ही उन्होंने यह भी लिख दिया कि पृथ्वी एक प्राण या उछ्वासकाल में एक कला घूमती है (प्राणेनैति कलां भू:)*।

गणितपाद

आर्यभटीय भारतीय गणित-ज्योतिष का पहला ग्रंथ है जिसमें गणित से संबंधित एक स्वतंत्र प्रकरण है। आर्यभट का अनुकरण बाद के कई गणितज्ञ-ज्योतिषियों ने किया। आर्यभटीय का दूसरा खंड (गणितपाद), जिसमें कुल 33 श्लोक हैं, गणित से संबंधित है। आर्यभट ने गणित से संबंधित केवल महत्वपूर्ण विषयों की ही चर्चा की है, और वह भी संक्षिप्त सूत्रों में। उन्होंने केवल नियम और निष्कर्ष दिए हैं। उनके सूत्रों की रचना इतनी संक्षिप्त और गठी हुई है कि कई बार समझने में काफी कठिनाई होती है। आर्यभट ने नियमों के प्रमाण नहीं दिए हैं, उदाहरण भी नहीं दिए हैं। सूत्रों का स्पष्टीकरण और उससे संबंधित उदाहरण टीकाकारों ने प्रस्तुत किए हैं।

फिर भी, आर्यभट ने उनके समय तक ज्ञात गणित के सभी प्रमुख विषयों को संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया है। मंगलाचरण के बाद के कुल 32 श्लोकों में उन्होंने अंकगणित, क्षेत्रमिति, त्रिकोणमिति और बीजगणित से संबंधित प्रमुख और महत्वपूर्ण नियमों तथा निष्कर्षों को समेट लिया है। इसमें से कुछ नियम पहले से ज्ञात थे, कुछ स्वयं आर्यभट ने खोजे।

सर्वप्रथम आर्यभट संख्या–स्थानों के नाम बताते हैं – एक, दश, शत, सहस्त्र,

अयुत	10000
नियुत	100000
प्रयुत	1000000
कोटि	10000000
अर्बुद	100000000
वृंद	1000000000

ये स्थान-नाम क्रमश: दाएं से बाएं गिनाए गए हैं और प्रत्येक अगला स्थान पिछले स्थान से दस गुना है, इसलिए आर्यभट लिखते हैं –

स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात्।

* आर्यभट के अनुसार एक दिन = 60 नाड़ी = 3600 विनाड़ी = 21600 प्राण या उछ्वास या सांस और एक चक्र = 12 राशि = 360 अंश = 21600 कला
इसलिए पृथ्वी एक प्राण में एक कला घूमती है।

तात्पर्य यह कि, आर्यभट नई स्थानमान-युक्त अंक-पद्धति से भलीभांति परिचित थे।

आर्यभट ने त्रैराशिक* का जो नियम दिया है वह उनके पहले से भारतीयों को ज्ञात रहा है। उन्होंने भिन्नों के समच्छेदीकरण** को 'सवर्णत्व' कहा है और इसके लिए नियम दिया है। उन्होंने विलोम विधि*** का भी नियम दिया है।

भारत में पहली बार शुल्वसूत्रों में हमें कुछ ज्यामितीय नियम देखने को मिलते हैं। परन्तु प्राचीन भारत में यूनानी ज्यामितिकारों की तरह प्रमेयों के प्रमाण प्रस्तुत करने की परंपरा विकसित नहीं हुई।

यूक्लिड (300 ई. पू.) ने जिस तरह ज्यामिति को तार्किक आधार प्रदान किया, उस तरह भारतीय क्षेत्रमिति के लिए संभव नहीं हुआ। ज्यामितीय आकृतियों के बीजगणितीय हल प्रस्तुत करने में भारतीय गणितज्ञों की ज़्यादा दिलचस्पी रही।

आर्यभट ने गणितपाद में वर्ग, धन, त्रिभुज, समलंब, पिरामिड (सूचीस्तंभ), वृत्त और गोल की चर्चा की है। उन्होंने पिरामिड के आयतन के लिए जो सूत्र दिया है वह शुद्ध नहीं है।

वृत्त का वर्ग उर्फ पाई का मान

ज्यामिति में वृत्त की परिधि और उसके व्यास के अनुपात (π) का बड़ा महत्व है। सर्वसामान्यतः हम यह भी कह सकते हैं कि जिस देश में जिस काल में π का जितना अधिक शुद्ध मान प्राप्त किया गया, वह देश उस काल में गणित के क्षेत्र में उतना ही आगे था। आर्यभट के पहले हमारे देश में π के लिए 3, वर्गमूल 10 और 3.09 जैसे स्थूल मानों का प्रयोग होता था। आर्यभट ने इस अनुपात के लिए काफी शुद्ध मान प्रस्तुत किया। वे कहते हैं: "62832 उस वृत्त कि परिधि का आसन्न मान है जिसका व्यास 20000 है।

अर्थात,

परिधि/व्यास = 62832/20000

3.1416

π का यह मान चार दशमलव स्थानों तक शुद्ध है। विशेष महत्व की

* त्रैराशिक उदाहरण – यदि 20 रुपए में एक किलो प्याज़ मिलती है तो 168 रुपए में कितने किलो मिलेगी?

**भिन्नों का समच्छेदीकरण – भिन्नों के हर स्थानों यानी नीचे की संख्याओं को समान करना।

*** विलोम विधि का उदाहरण – वह कौन-सी संख्या है जिसमें 3 से गुणा करें, फिर 1 घटाएं, फिर आधा करें, फिर 2 जोड़ें, फिर 3 से भाग दें और 2 घटाएं, तो अंत में 1 प्राप्त होगा?

बात यह है कि आर्यभट ने इसे 'आसन्न' यानी सन्निकटन मान कहा है। अर्थात्, आर्यभट जानते थे कि इस अनुपात का यथार्थ मान ज्ञात करना असंभव है। आज हम जानते हैं कि π एक अबीजीय (ट्रांसेंडेंटल) संख्या है, और इसलिए वृत्तक्षेत्र को वर्गक्षेत्र में बदलना संभव नहीं है। यानी कि किसी भी वृत्त के क्षेत्रफल जितना क्षेत्रफल रखने वाला वर्ग नहीं बनाया जा सकता।

आर्यभट द्वारा π के लिए एक बेहतर मान प्रस्तुत किए जाने पर भी ब्रह्मगुप्त पुराने 3 तथा वर्गमूल 10 मानों का ही उपयोग करते रहे। यूनानी गणितज्ञों के π के मान आर्यभट के मान से बेहतर नहीं थे। मगर आर्यभट के लगभग समकालीन एक चीनी ग्रंथ में π के लिए जो 3.1415929 मान है वह ज़रूर बेहतर है।

कुछ और सूत्र

शुल्वसूत्रों में पाइथेगोरस के प्रसिद्ध प्रमेय की जानकारी है। आर्यभट ने भी इस प्रमेय को प्रस्तुत किया है। आर्यभट के समय तक अभी 'रेखागणित' शब्द रूढ नहीं हुआ था, न ही 'बीजगणित' शब्द। प्राचीन भारत में रेखागणित के लिए शुल्वगणित, रज्जुगणित, क्षेत्रमिति जैसे शब्दों का प्रयोग होता था। बीजगणित के लिए प्राचीन भारत में प्रचलित शब्द थे – कुट्टक गणित या अव्यक्त गणित। ब्रह्मगुप्त ने 628 ई. में अनिर्णीत या अनिर्धार्य समीकरणों के लिए 'कुट्टक गणित' का प्रयोग किया है। 'कुट्टक' का अर्थ है – कूटना, कुट्टी करना। आर्यभट ने प्रथम घात के अनिर्णीत समीकरण हल करने के लिए तरीका बताया है। उन्होंने श्रेढियों के लिए भी नियम दिए हैं। आर्यभटीय में श्रेणियों की भी चर्चा है।

आर्यभट ने वृत्त के क्षेत्रफल और गोल के घनफल (आयतन) के लिए सूत्र दिए हैं। वृत्त के क्षेत्रफल का उनका सूत्र तो सही है, मगर गोल के घनफल का उनका सूत्र सही नहीं है। आर्यभट के काफी पहले यूनानी ज्यामितिकार गोल के घनफल के लिए शुद्ध सूत्र प्राप्त कर चुके थे।

भारत में ब्याज लेने की प्रथा बहुत पुरानी है। संस्कृत में 'ब्याज' शब्द का मूल अर्थ है – छल, कपट, चालाकी आदि। परंतु प्राचीन भारत में सूद के अर्थ में यह ब्याज शब्द नहीं, बल्कि 'वृद्धि' तथा 'कुसीद' (दु:ख देने वाला) शब्द प्रयुक्त होते थे। आर्यभट ने गणितपाद के एक श्लोक में मूलधन

पर ब्याज की रकम जानने का भी नियम दिया है।

कालक्रियापाद

आर्यभटीय का तीसरा अध्याय है – कालक्रिया। कुल 25 श्लोकों के इस अध्याय का प्रयोजन है, ग्रहों की स्पष्ट (यथार्थ) स्थितियां निर्धारित करने के लिए आवश्यक सिद्धांत प्रस्तुत करना। चूंकि काल-निर्धारण से ही ग्रहों की स्थितियां स्पष्ट हो सकती हैं, इसलिए कालक्रिया यानी काल-गणना एक सार्थक शीर्षक है।

इसी अध्याय के एक श्लोक में आर्यभट काल-संबंधी अपनी विशिष्ट धारणा को भी स्पष्ट कर देते हैं। लिखते हैं : "युग, वर्ष, मास और दिवस सभी का प्रारंभ एक ही समय चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से हुआ। काल अनादि और अनंत है। आकाश के ग्रहों के गमन को जानकर काल-गणना की जाती है।"

आर्यभट के इस कथन का आशय यह है कि, वस्तुतः काल तो अनादि एवं अनंत है, केवल लोगों के उपयोग के लिए ही इसके आरंभ और अंत को निर्धारित किया जाता है। काल का यह निर्धारण ग्रहों और नक्षत्रों की स्थितियों से होता है। जैसे, युग का आरंभ उस समय से माना जाता है जब सभी ग्रह एक साथ मेषादि (प्रथम मेष राशि के आरंभिक बिंदु) में लंका* के क्षितिज पर थे।

आर्यभट ने अध्याय के आरंभ में ही काल और खगोल की इकाइयां प्रस्तुत कर दी। जैसे, एक दिन = 60 नाड़ी = 3600 विनाड़ी = 21600 प्राण। इसी प्रकार, एक चक्र = 12 राशि = 360 अंश = 21600 कला। इसलिए प्रथम अध्याय में ही उन्होंने कह दिया था :

प्राणेनैति कलां भूः

(एक प्राण में पृथ्वी एक कला घूमती है)।

आगे के श्लोकों में आर्यभट काल की बड़ी इकाइयां प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, सूर्य आकाश में पुनः उसी नक्षत्र के आदि में पहुंचने में जो समय लेता है यानी जितने समय में वह आकाश का चक्कर पूरा करता है वह एक सौरवर्ष है। फिर वे बताते हैं कि युग में वर्ष, चांद्र मास, सावन दिन** और नाक्षत्र दिन कितने होते हैं।

* लंका: विषुवद्-वृत्त पर स्थित वह काल्पिनिक स्थान जहां उज्जैन से गुज़रने वाली याम्योत्तर यानी रेखांश रेखा आकर मिलती है।

** एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय सावन दिन कहलाता है।

आर्यभट के अनुसार पृथ्वी घूमती है और नक्षत्र अचल हैं, इसलिए नक्षत्र के एक उदय से दूसरे उदय तक का काल नाक्षत्र दिन वस्तुत: पृथ्वी के एक बार घूमने के तुल्य होता है। अत: पृथ्वी एक युग में जितनी बार घूमती है वही युग में नाक्षत्र दिनों की संख्या है। वे स्पष्ट लिखते हैं : युग में नाक्षत्र दिनों की संख्या (1582237500) पृथ्वी के अपनी धूरी पर भ्रमणों की संख्या के तुल्य होती है –

क्वावर्ताश्चापि नाक्षत्रा:

आगे आर्यभट ने युग में अधिमासों और क्षय तिथियों की भी संख्याएं दी हैं। फिर वे अपनी विशिष्ट युग-पद्धति को पुन: दोहराते हैं। जैसा कि पहले बताया गया है, आर्यभट देवता ब्रह्मा के केवल एक दिन (कल्प) की ही चर्चा करते हैं, अन्य ज्योतिष-ग्रंथों की तरह ब्रह्मा के वर्ष या ब्रह्मा की आयु (महाकल्प) की कोई बात नहीं करते।

इसी अध्याय के एक श्लोक में आर्यभट अपने जन्म वर्ष (476 ई.) की स्पष्ट जानकारी देते हैं और बताते हैं कि कलियुग के 3600 वर्ष बीत जाने पर यानी 499 ई. में उनकी आयु 23 साल की थी। आर्यभट ने स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहा है कि उन्होंने 23 साल की आयु में आर्यभटीय की रचना की है।

धरती ही है ब्रह्मांड का केंद्र

कालक्रियापाद के आगे के कुछ श्लोकों में आर्यभट ने ग्रह कक्षाओं की परिधियां दी हैं। पर यह सब बातें परिकल्पित हैं। भारतीय ज्योतिषियों ने, आर्यभट ने भी, माना कि सभी ग्रह पृथ्वी के चारों ओर समान गति से परिक्रमा करते हैं। परंतु वास्तविकता यह नहीं है। वस्तुत: सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं और उनके वेग समान नहीं हैं। सूर्य से अधिक दूर के ग्रह अधिक धीमी गति से घूमते हैं।

आर्यभट ने एक श्लोक में ग्रहों की कक्षाओं का क्रम स्पष्ट कर दिया है : सबसे ऊपर नक्षत्र-मंडल है। उसके नीचे क्रमश: शनि, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध तथा चंद्रमा की कक्षाएं हैं। ग्रहों के क्रम के बारे में सभी भारतीय ज्योतिषियों की यही मान्यता रही है।

मगर सप्ताह के वारों का क्रम यह नहीं है। वस्तुत: आज प्रचलित सात वारों के नाम वैदिक साहित्य, वेदांग-ज्योतिष तथा महाभारत में कहीं देखने को नहीं मिलते। भारत में सात वारों और बारह राशियों का आगमन, खल्दियाई-

यूनानी* फलित-ज्योतिष के साथ, ईसा की आरंभिक सदियों में हुआ। ग्रहगति के भारतीय सिद्धांत भी यूनानी ज्योतिष से ही ग्रहण किए गए हैं।

प्राचीन काल के ज्योतिषियों की, यूनानी ज्योतिषियों की भी दृढ़ मान्यता रही है कि पृथ्वी ही केन्द्र-स्थान में है और ग्रह व सूर्य भी, इसी की परिक्रमा करते हैं। परन्तु पृथ्वी को केंद्र में मानकर ग्रहों की स्पष्ट गतियों को जानने में कई कठिनाइयां हैं। इसके लिए यूनानी गणितज्ञ-ज्योतिषियों ने कुछ कृत्रिम योजनाएं तैयार की थीं, जिन्हें उत्केंद्री और अधिचक्री (Eccentric and Epicyclic) के नाम से जाना जाता है। ईसा की आरंभिक सदियों में भारतीय गणितज्ञ-ज्योतिषी अपनी परंपरागत मान्यताओं में संशोधन करने में जुटे हुए थे। उसी दौरान उन्होंने उत्केन्द्री और अधिचक्री योजनाओं को भी ग्रहण किया। इनकी जानकारी सूर्य-सिद्धांत में है। आर्यभट ने भी कालक्रियापाद में इनका वर्णन किया है।

आर्यभट एक वेधकर्त्ता ज्योतिषी और कुशल गणितज्ञ थे। उन्होंने बेबीलोनी-खल्दियाई और यूनानी ज्योतिष की कई मान्यताओं को अपनाया और उन्हें सुव्यवस्थित रीति से प्रस्तुत किया। उनके इस प्रस्तुतीकरण में मौलिकता है। कहा जा सकता है कि यूनानी गणित-ज्योतिष में जो स्थान तालेमी (लगभग 150 ई.) का है, वही स्थान भारतीय गणित-ज्योतिष में आर्यभट का है।

गोलपाद

आर्यभटीय का चौथा और अंतिम अध्याय है – गोलपाद। पचास श्लोकों के इस सबसे बड़े अध्याय में तारा-मंडल (भगोल) पर सूर्य, चंद्र तथा ग्रहों की गतियों को समझाया गया है। भगोल** के प्रमुख वृत्तों को भी परिभाषित किया है। पृथ्वी की स्थिति और दैनंदिन गति को भी इसी अध्याय में स्पष्ट किया गया है। इसी अध्याय में आर्यभट ने ग्रहणों का भी विवेचन किया है। संक्षेप में, इस अध्याय का विषय गोलीय खगोलिकी (Spherical Astronomy) है।

सूर्य के आकाश-मार्ग को क्रांतिवृत्त कहते हैं। क्रांतिवृत्त और विषुवत्-वृत्त एक दूसरे को जिन दो बिन्दुओं पर काटते हैं उन्हें संपात-बिन्दु कहते हैं। पहले से ज्ञात होने के कारण आर्यभट

* खल्दियाई – मेसोपोटेमिया के बेबीलोनियों के लिए उनके शासन के अंतिम दौर (626 – 639 ई. पू.) में प्रयुक्त नाम है Chaldean.

**भ यानी नक्षत्र, भगोल यानी नक्षत्र-मंडल।

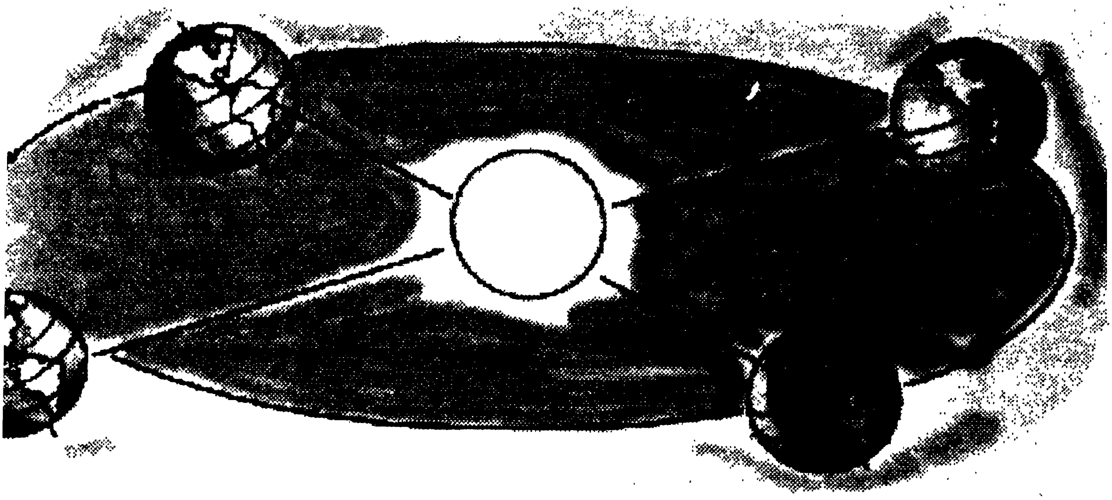

इनकी चर्चा नहीं करते। वे संपात-बिन्दुओं के पश्च-गमन यानी अयन-चलन की भी कोई चर्चा नहीं करते।

अन्य भारतीय ज्योतिषियों की तरह आर्यभट की भी यह मान्यता रही कि समूचे विश्व में अकेला सूर्य ही प्रकाश का स्रोत है और सूर्य के प्रकाश से ही आकाश के सभी पिंड, तारे भी, प्रकाशित होते हैं। परंतु आज हम जानते हैं कि तारे स्वप्रकाशित पिंड हैं।

आर्यभट पृथ्वी के बारे में जो मत व्यक्त करते हैं वे मौलिक और अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। शुरू में ही वे स्पष्ट कर देते हैं कि पृथ्वी किसी आधार पर स्थित नहीं है, यह निराधार है। वराहमिहिर, भास्कराचार्य आदि का भी यही मत रहा है। मगर आर्यभट का यह मत कि पृथ्वी चार महाभूतों – मिट्टी, जल, अग्नि और वायु से निर्मित है, दूसरे ज्योतिषियों से भिन्न है। उन्होंने पांचवें तत्व 'आकाश' को स्वीकार नहीं किया।

चूंकि आर्यभट की चार महाभूतों की मान्यता स्मृति-परंपरा और आस्तिक मतों के विरुद्ध थी, इसलिए परंपरा के पोषक पुरोहित वर्ग द्वारा इसका ज़बरदस्त विरोध हुआ। वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र में पुनः पंचमहाभूत की स्थापना की।

विरोध के स्वर

आर्यभट की जिस मान्यता का, सही होने पर भी, सबसे ज़्यादा विरोध हुआ वह है भूभ्रमण। गोलपाद के एक श्लोक में वे कहते हैं: "जिस तरह नाव में बैठा हुआ कोई मनुष्य जब पूर्व दिशा में जाता है तब तट की अचल वस्तुओं को उलटी दिशाओं में जाता हुआ अनुभव करता है, उसी तरह अचल तारागण लंका (भूमध्य रेखा पर वह स्थान जहां उज्जैन से गुज़रने वाला रेखांश आकर मिलता है) में

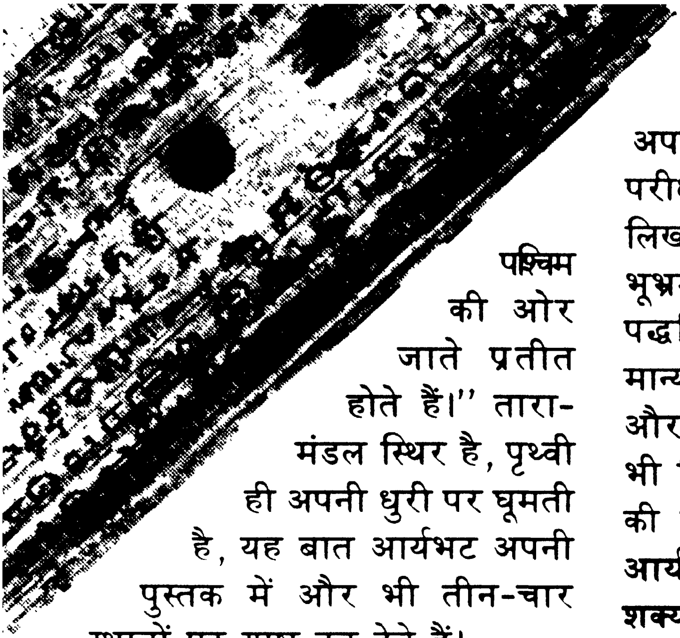

पश्चिम की ओर जाते प्रतीत होते हैं।" तारा-मंडल स्थिर है, पृथ्वी ही अपनी धुरी पर घूमती है, यह बात आर्यभट अपनी पुस्तक में और भी तीन-चार स्थानों पर स्पष्ट कर देते हैं।

न केवल भारतीय ज्योतिष के इतिहास में, अपितु उस समय तक की समूची भारतीय चिंतन-परंपरा में आर्यभट का भूभ्रमणवाद एक नया क्रांतिकारी सिद्धांत था। उनकी यह मान्यता सही थी, परन्तु श्रुति-स्मृति परंपरा के विरुद्ध थी, इसीलिए आर्यभट के जीवनकाल में ही इसका विरोध भी शुरू हो गया था। आर्यभट के भूभ्रमण वाद पर हमला करने वाले पहले ज्योतिषी वराहमिहिर (मृत्यु : 587 ई.) हैं। आर्यभट के भूभ्रमणवाद पर कठोर प्रहार करने वाले दूसरे गणितज्ञ-ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त हैं। उन्होंने आर्यभट के दोष दिखाने के लिए अपने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' में तंत्र-परीक्षा नामक एक स्वतंत्र अध्याय ही लिखा। ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट के, न केवल भूभ्रमणवाद का बल्कि उनकी युग-पद्धति और ग्रहणों संबंधी सही मान्यताओं का भी खंडन किया। उन्होंने और भी दोष गिनाए और अंत में यह भी लिख दिया कि आर्यभट के दोषों की संख्या बताना संभव नहीं है – **आर्यभट दूषणानां संख्या वक्तुं न शक्यते**!*

गोलपाद के ही एक श्लोक में ग्रहणों के कारण बताते हुए आर्यभट लिखते हैं : "सूर्य को जब चंद्र की छाया ढक लेती है तो सूर्य-ग्रहण होता है और जब पृथ्वी की बड़ी छाया चंद्र को ढक लेती है तब चंद्र-ग्रहण होता है।" आर्यभट राहु को ग्रहणों का कारण नहीं मानते। मगर ब्रह्मगुप्त श्रुति-स्मृति के अनुसार राहु को ग्रहणों का कारण मानते हैं और इसलिए आर्यभट के मत का विरोध करते हैं।

परंतु ब्रह्मगुप्त की दृष्टि में आर्यभट का सबसे बड़ा अपराध था – श्रुति-स्मृति की अवहेलना करके भूभ्रमण

* आर्यभट के भूभ्रमण के खिलाफ ब्रह्मगुप्त ने निम्न तर्क दिए : यदि पृथ्वी घूमती है, तो मनुष्य अपने-अपने स्थान पर पुनः कैसे लौट पाते हैं, और ऊंचे-ऊंचे मकान नीचे क्यों नहीं गिरते? वराहमिहिर, लल्ल आदि अन्य ज्योतिषियों ने कहा कि यदि पृथ्वी घूमती है, तो पक्षी अपने घोसलों में कैसे लौट आते हैं? यदि पृथ्वी पूर्व की ओर घूमती है, तो आकाश की ओर छोड़ा गया तीर पश्चिम की ओर गिरेगा और बादल भी पश्चिम की ओर चलेंगे। यदि कहा जाए कि पृथ्वी धीरे घूमती है, तो यह एक दिन में एक परिक्रमा कैसे पूरी कर लेती है?

का नया सिद्धांत प्रतिपादित करना। उन्होंने अपने ग्रंथ में स्पष्ट लिखा है : "आर्यभट ... आदि के विचार लोक विश्वास के विरुद्ध और वेदों, स्मृतियों और संहिताओं (गर्ग आदि की संहिताओं) की मान्यताओं के विपरीत हैं।"

भू: का बना भं

मगर बात केवल दोष दिखाने तक ही सीमित नहीं रही। आर्यभटीय की रचना के करीब सवा सौ वर्षों में आर्यभट के भूभ्रमण को बलपूर्वक भभ्रमण (तारागण-भ्रमण) में बदल देने के प्रयास हुए। आर्यभटीय में जहां भू: और कु (पृथ्वी) शब्द थे वहां उन्हें भं (तारा-मंडल) में बदल दिया गया! सर्वप्रथम यह परिवर्तन भास्कर प्रथम के आर्यभटीय-भाष्य (629 ई.) में ही देखने को मिलता है, ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत की रचना के ठीक एक साल बाद। बड़े आश्चर्य की बात है कि भास्कर-प्रथम अपने को आर्यभट का अनुयायी बताते हैं, उन्हें 'प्रभु' कहते हैं, मगर अपने आर्यभटीय-भाष्य में अत्यंत महत्वपूर्ण मूल शब्द भू: को भं में बदल देते हैं। बाद में आर्यभटीय के सभी टीकाकारों ने, दक्षिण भारतीय टीकाकारों ने भी, यही किया – भूभ्रमण को भभ्रमण में बदल दिया। जिन्होंने बाद में आर्यभट के सिद्धांत के अनुसार स्वतंत्र ग्रंथ लिखे उन्होंने भी टीकाकारों का ही अनुकरण किया, हालांकि सभी जानते थे कि आर्यभट ने वस्तुत: भूभ्रमण का ही प्रतिपादन किया है।

मगर केवल तीन ही ज्योतिषी सचाई को खुलकर कह पाए, बौद्धिक ईमानदारी और भरपूर साहस का परिचय दे पाए। ये हैं– पृथूदक स्वामी (854 ई.), उदयदिवाकर (1073 ई.) और मक्किभट्ट (1377 ई.)। मज़े की बात यह है कि इन तीनों ने ही आर्यभटीय पर कोई भाष्य नहीं लिखा है। ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के भाष्यकार पृथूदक स्वामी लिखते हैं: आर्यभट ने भूभ्रमण को स्वीकार किया है। उनका कहना भी है – **प्राणेनैति कलां भू:।** परन्तु लोकभय के कारण भास्कर-प्रथम और दूसरों ने इसकी व्याख्या भिन्न प्रकार से की है।

आर्यभटीय के भू: और कु शब्दों को भं में यानी भूभ्रमण को भभ्रमण में बदल देने की यह व्यवस्था 629 ई. के पहले ही हो चुकी थी। यह व्यवस्था इतनी बलशाली और प्रभावकारी थी कि आधुनिक काल तक कोई भी भारतीय ज्योतिषी इसे बदलने का साहस नहीं जुटा

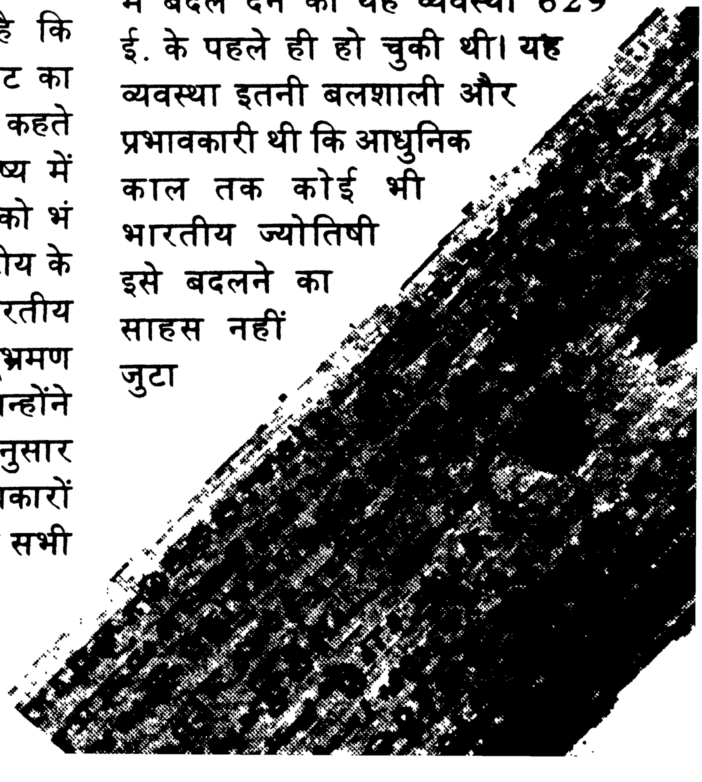

पाया। भास्कराचार्य (1150 ई.) पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की तो चर्चा करते हैं, किन्तु भूभ्रमण को स्वीकार नहीं करते।

लोकभय! किन लोगों का भय?

यह तो पता चल गया कि यह सब लोकभय के कारण हुआ। मगर बुनियादी सवाल है – यह भय किन लोगों का था? यह भय सामान्य जनों का कदापि नहीं हो सकता। यहां लोकभय का अर्थ है, समाज के उस विशिष्ट वर्ग का भय जिसके हितसाधन में आर्यभट द्वारा प्रतिपादित भूभ्रमण का सिद्धांत बाधक बनता था। यह था पुरोहित-वर्ग, जिसका हित वेदों, धर्मशास्त्रों और आर्यभट के एक-दो सदी पहले से लिखे जा रहे नए-नए पुराण-ग्रंथों के वचनों की रक्षा के साथ जुड़ा हुआ था। मगर आर्यभट का भूभ्रमण का नया वैज्ञानिक सिद्धांत पृथ्वी-संबंधी श्रुति-स्मृति की परम्परागत मान्यताओं का खंडन करता था। पुरोहित वर्ग के लिए एक नई चुनौती थी। 'परमभागवत' गुप्तों के शासनकाल में यह वर्ग काफी बलशाली बन गया था। पृथूदक स्वामी ने जिसे लोकभय कहा है वह वस्तुत: शक्तिशाली पुरोहित वर्ग का भय था। वेदों और धर्मशास्त्रों के हवाले देकर अचला पृथ्वी का जो लोकविश्वास कायम किया गया था उसे टिकाए रखने में सबसे ज़्यादा हित पुरोहित वर्ग का ही था। इसलिए समाज के इस प्रभावशाली वर्ग ने आर्यभट के भूभ्रमणवाद के उन्मूलन के लिए हर संभव प्रयास किया हो, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

मगर उनके इस प्रयास को पूर्ण सफलता नहीं मिली। आर्यभट के भूभ्रमण से संबंधित मूल शब्द बदले गए, देश के अधिकतर भागों से 'आर्यभटीय' की हस्तलिपियां भी गायब हो गईं, उनका एक अन्य ग्रंथ 'आर्यभट-सिद्धांत' आज भी अप्राप्य है, फिर भी आर्यभट के इस सिद्धांत की चोटी के प्राय: सभी ज्योतिषियों को जानकारी रही है।

परन्तु धर्माचार्यों द्वारा भूभ्रमण का विरोध भी सतत जारी रहा। जब देखा गया कि, दबी जुबान में ही सही, आर्यभट का भूभ्रमणवाद जीवित है, तो कट्टर वेदांती अप्पय दीक्षित (1530–1600 ई.) अंतत: 'व्यवस्था' देते हैं : "वेद में पृथ्वी को 'प्रतिष्ठा' यानी स्थिर कहा गया है। आर्यभट आदि द्वारा प्रतिपादित भूभ्रमणादिवाद श्रुति और न्याय के विरुद्ध होने के कारण हेय है।

आर्यभटाद्यभिमतभूभ्रमणादिवादानां श्रुतिन्यायविरोधेन हेयत्वात्।"*

ज्योतिष एक प्रत्यक्ष शास्त्र है, विज्ञान है। ज्योतिषशास्त्र और धर्मशास्त्र

की परम्पराएं अलग-अलग हैं। ग्रहों-उपग्रहों और नक्षत्रों की गतियों को धर्मशास्त्र के उपदेशों के अनुसार नहीं बदला जा सकता। मगर अप्पय दीक्षित ने ठीक यही किया : भूभ्रमण को हेय सिद्ध करने के लिए 'वेदवाक्य' का सहारा लिया। अथर्ववेद में पृथ्वी को 'प्रतिष्ठा' यानी अचला यानी स्थिर कहा गया है। (अथर्ववेद 6.77)

अप्पय दीक्षित जब भूभ्रमण को हेय करार दे रहे थे, तब तक यूरोप में भूभ्रमण की अच्छी तरह स्थापना हो चुकी थी। कोपर्निकस (1473–1543 ई.) का सूर्यकेंद्र सिद्धांत भी अस्तित्व में आ चुका था और ज्योर्दानो ब्रूनो (1547–1600 ई.) यूरोप के शहरों में घूम-घूमकर उसका प्रचार कर रहे थे। रोम के ईसाई धर्माचार्यों के आदेश से 1600 ई. में ज्योर्दानो ब्रूनो को ज़िन्दा जला देना और 'वेदप्रामाण्य' का आश्रय लेकर आर्यभट के भूभ्रमणवाद के उन्मूलन के लिए हर संभव प्रयास करना, इन दोनों बातों में ज़्यादा अंतर नहीं है।

आर्यभट भी द्विज कुल में ही पैदा हुए थे, परन्तु वे श्रुति-स्मृति और पुराणों के अंधभक्त नहीं थे। आर्यभटीय के अंत में उन्होंने लिखा भी है "मैंने यथार्थ और मिथ्या ज्ञान के समुद्र में से स्वबुद्धि से यथार्थ ज्ञान का उद्धार किया है।" मगर ब्राह्मण-पुरोहितों के वर्ग ने एक उच्च वर्गीय गणितज्ञ-ज्योतिषी के मतों को हेय क्यों करार दिया?

इसके लिए भी प्रेरणाएं पहले से मौजूद थीं। मनुस्मृति की व्यवस्था है : "श्रुति और स्मृति में बताए गए धर्म का अनुष्ठान करने वाले मनुष्य की इस लोक में कीर्ति होती है और परलोक में जाने पर उसे अत्युत्तम सुख मिलता है। श्रुति का अर्थ है वेद और स्मृति का अर्थ है धर्मशास्त्र। इन दोनों के प्रतिकूल तर्क नहीं करना चाहिए, क्योंकि इन्हीं से संपूर्ण धर्म प्रकट हुआ है। जो द्विज तर्कबुद्धि का सहारा लेकर श्रुति-स्मृति परम्परा का तिरस्कार करता है उसे साधुजनों द्वारा नास्तिक और वेदनिन्दक मानकर बहिष्कृत कर देना चाहिए।" (अध्याय 2,9–11)

मनु की यह 'व्यवस्था' प्रमुखतः ब्राह्मण लोकायतिकों के लिए थी। मगर बुद्धिवादी आर्यभट ने भी श्रुति-स्मृति की अवहेलना की थी, इसलिए उन पर भी इसे लागू कर दिया गया! आर्यभट की मान्यताओं को बदलने और मिटा देने के लिए सभी संभव प्रयास किए गए, सतत कई सदियों तक।

इतना ही नहीं, आर्यभट को लोक-

परशुराम कृष्ण गोड़े का लेख 'अप्पयदीक्षित'स क्रिटिसिज़्म ऑफ आर्यभट्'स थ्योरी ऑफ द डायूर्नल मोशन ऑफ द अर्थ' ABORI, Vol 19 (1938) page 93–95।

परम्परा से भी बहिष्कृत कर देने के प्रयास हुए। परम्परा से हमें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार के नौ रत्नों के बारे में जानकारी मिलती है। तथाकथित रूप से कवि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध, परन्तु दरअसल 12वीं सदी में लिखी गई 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक जाली पोथी के एक श्लोक में भी इन नौ रत्नों की सूची है – धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि।

हम जानते हैं कि ये सारे पंडित चंद्रगुप्त–विक्रमादित्य के समय (376–414 ई.) के नहीं हैं। महत्व की बात यह है कि इस सूची में कुसुमपुर यानी पाटलिपुत्र में पूजित ज्ञान को प्रतिष्ठित करने वाले गुप्तकाल के ही प्रथम महान गणितज्ञ-ज्योतिषी आर्यभट का नामोल्लेख नहीं है! क्या यह भारतीय विज्ञान के प्रथम पौरुषेय कृतित्व को और उसके रचनाकार को लोक-परम्परा से ही बहिष्कृत कर देने वाला प्रयत्नपूर्वक किया गया प्रयास नहीं है?

अतः यह सुस्पष्ट हो जाता है कि समाज के किस वर्ग ने, किस समय से, श्रुति-स्मृति परम्परा का खंडन करने वाले नये ज्ञान-विज्ञान का ज़बरदस्त विरोध शुरू कर दिया था। कालांतर के हमारे वैज्ञानिक अवनति के स्रोत तथाकथित 'स्वर्णयुग' में ही मौजूद हैं।

गुणाकर मुळे: प्रसिद्ध विज्ञान लेखक। हिन्दी में विज्ञान और विज्ञान के इतिहास पर शायद एक मात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने चार दशक तक लगातार और गंभीर लेखन किया है। उनका मूल विषय गणित रहा है। पचास से भी ज़्यादा पुस्तकें प्रकाशित।

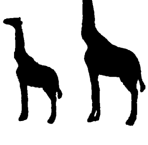

पानी में नाचता नमक का घोल

बस पानी, नमक, सीरिंज, गिलास जैसी मामूली चीज़ों को जुटाकर एक मज़ेदार खेल की शुरुआत की जा सकती है और साथ में एक सिर खुजलाने वाला सवाल भी . . . .

ए. दास

एक गिलास सादा पानी लेकर अगर उसमें थोड़ा-सा नमकीन पानी मिला दें तो क्या होगा? रोज़मर्रा का हमारा अनुभव यह बताता है कि नमकीन पानी सादे पानी में तुरंत घुल जाएगा। लेकिन इसी खेल को मैं थोड़े अलग तरीके से पेश कर रहा हूं। इसके लिए हमें कुछेक चीज़ों की ज़रूरत होगी।

सामग्री

एक प्लास्टिक की पारदर्शी (5 मिलीलीटर वाली) इंजेक्शन सीरिंज। इसकी सुई करीब 1 मिलीलीटर मोटी हो। दवाई की दुकान पर डिस्पोज़ेबल सीरिंज के नाम से यह आसानी से उपलब्ध है। दो गिलास, एक पुराना पोस्टकार्ड या लगभग इतना ही बड़ा मोटा कागज़, पानी, एक ड्रॉपर, और थोड़ा-सा नमक।

खेल की तैयारी

सबसे पहले एक गिलास में तकरीबन ऊपर तक साफ पानी भर कर रख लें। इसके अलावा पोस्टकार्ड या मोटे कागज़ के टुकड़े पर बीच में एक छेद बना लीजिए। छेद इतना

चौड़ा हो कि सीरिंज इसमें अटकाई (फंसाई) जा सके।

अब एक दूसरे गिलास में एक चौथाई पानी लेकर दो चम्मच नमक डालिए और नमकीन घोल तैयार कीजिए। जब नमक पानी में घुल जाए तो जिस तरह इंजेक्शन भरते हैं उसी तरह सीरिंज में नमकीन पानी भर लीजिए।

अब सीरिंज को पोस्टकार्ड के छेद में अटकाकर सादे पानी से भरे गिलास में उल्टा लटका दीजिए। अभी सीरिंज में से पिस्टन को नहीं निकालना है। अगला कदम है गिलास में पानी का तल और सीरिंज के नमकीन पानी का तल लगभग एक बराबर करना। ऐसा करने के लिए गिलास में ड्रॉपर की मदद से थोड़ा पानी डालना होगा या फिर पानी निकालने की ज़रूरत होगी।

साथ ही यह भी ख्याल रखें कि सीरिंज की सुई की नोक और गिलास की तली के बीच में डेढ़ से दो इंच का फासला बना रहे, ताकि सीरिंज से गिरने वाली धार को आप आसानी से देख पाएं। जब सब व्यवस्थाएं हो जाएं तो सीरिंज के पिस्टन को धीरे से (झटके से नहीं) निकाल दीजिए।

जो दिखने वाला है

अब निगाह जमाइए गिलास में सुई की नोक के पास। क्या दिख रहा है?

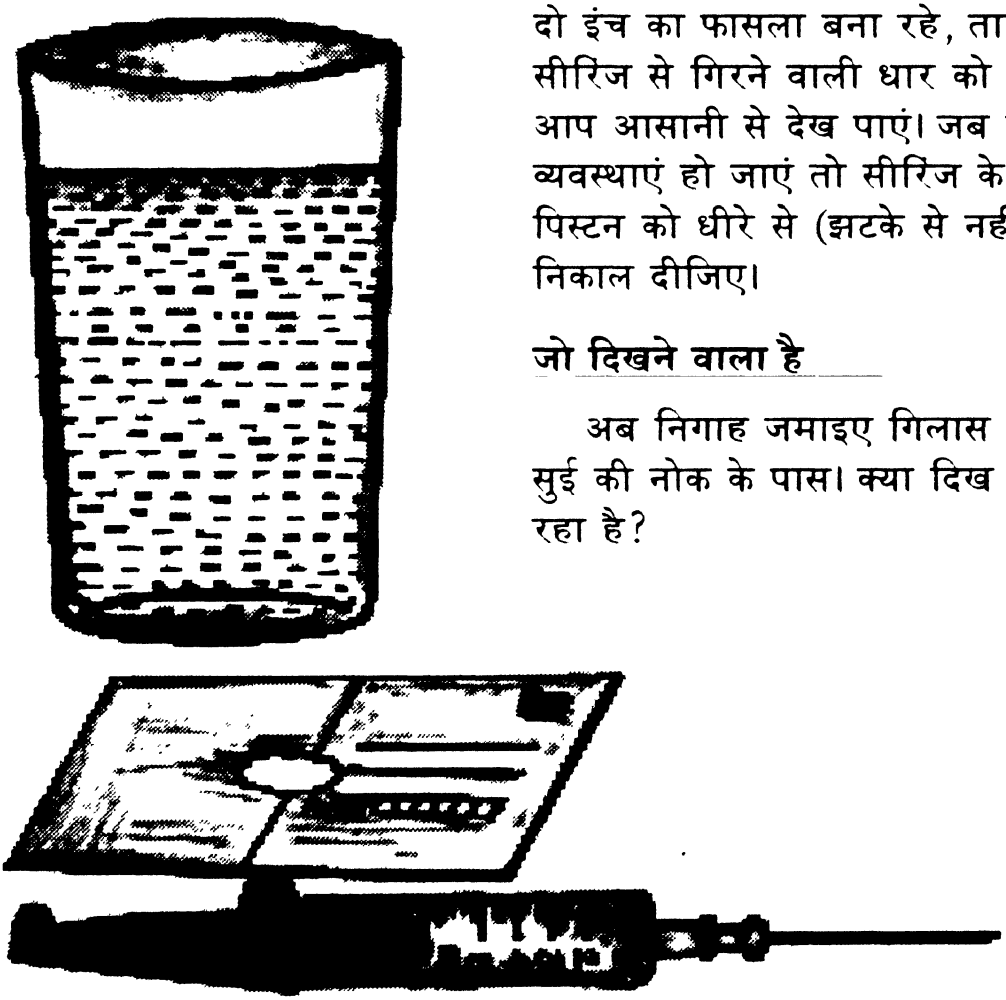

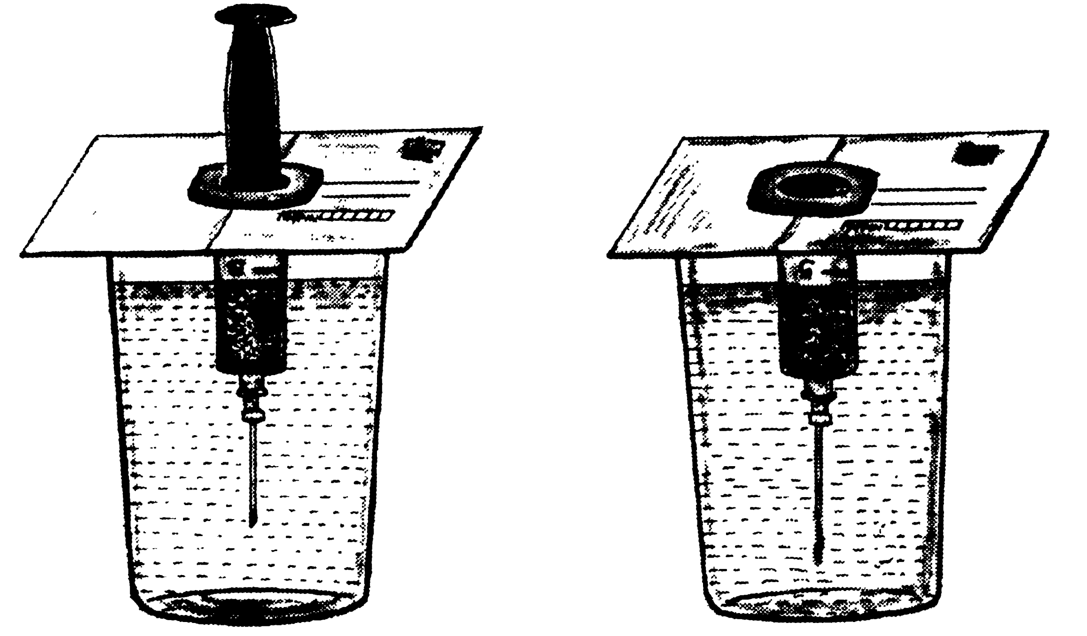

नमकीन पानी से भरी सीरिंज को पोस्टकार्ड की सहायता से सादे पानी से भरे गिलास में उल्टा लटका लीजिए। दो बातों का ध्यान रखना है। एक तो सीरिंज में पानी का तल और गिलास के पानी का तल लगभग एक बराबर होना चाहिए। साथ ही सीरिंज की सुई और गिलास के पेंदे के बीच डेढ़ से दो इंच का फासला रहे। उसके बाद बस आपको इतना करना है कि धीरे से खींचकर पिस्टन को निकाल दीजिए और लीजिए धार का मज़ा।

क्या एक महीन धार सुई से निकलकर गिलास के पानी में नीचे की ओर बहती हुई दिख रही है? अपनी निगाह को जमाए रखिए। करीब आधा मिनट चलने के बाद यह धार रुक जाएगी। जैसे ही धार रुके तो आप अपनी निगाह दौड़ाकर सीरिंज के भीतर देखने लगिए। क्योंकि अब सीरिंज के अंदर गिलास के साफ पानी की धार दिखेगी जो ऊपर की दिशा में बहती होगी। फिर यह धार भी बंद हो जाएगी और सीरिंज से गिलास में गिरने वाली धार शुरू हो जाएगी और फिर दूसरी. . .। लगभग आधे घंटे तक यह क्रम चलता ही रहेगा। अगर और मज़ा लेना हो तो नमक का घोल बनाते समय पानी में किसी भी रंग की स्याही की एक बूंद डाल दीजिए, और उठाइए रंगीन धार का लुत्फ।

इस प्रयोग को करते हुए मैंने एक बात और देखी कि नमक का घोल जितना अधिक सांद्र लिया

बतौर सूचक भी

परगोलेक्स या वेक्युलेक्स की गोलियां दवाई की दुकान पर मिल जाती हैं। ये दरअसल फिनोफ्थेलीन की गोलियां ही हैं। अगर कभी आपके पास प्रयोगशाला में फिनोफ्थेलीन खत्म हो जाए तो इन्हें पानी में घोलकर सूचक (इंडिकेटर) के रूप में इस्तेमाल कर सकते हो।

जाए धार बहने का क्रम उतनी ही अधिक देर तक चलता रहता है।

कुछ और खेल

इस दूसरे खेल में सीरिंज में नमक की बजाए कास्टिक सोडे का सांद्र घोल लीजिए। और गिलास में सादे पानी की बजाए परगोलेक्स की गोली घुला हल्का घोल लीजिए।

अपने उपकरण को पुनः उसी तरह जमाइए और चलने दीजिए धार को – रंगीन नज़ारे आपका दिल खुश कर देंगे।

वैसे तो यह प्रक्रिया किन्हीं भी दो तरल पदार्थ को लेकर की जा सकती है, लेकिन ज़रूरी है कि उनका आपेक्षित घनत्व अलग-अलग हो। साथ ही दोनों पदार्थ एक-दूसरे में घुलनशील भी होने चाहिए।

एक और ज़रूरी शर्त है कि अधिक आपेक्षित घनत्व वाले तरल को हमेशा सीरिंज में भरकर रखें।

लेकिन क्या बात सिर्फ धार चलाने के साथ ही खत्म हो गई। नहीं, बल्कि मुझे यह सवाल बड़ा परेशान कर रहा है कि 'आखिर यह धार चल क्यों रही है? और किस तरह चल रही है?' क्या आप मेरी मदद कर सकते हैं कुछ इस सिलसिले में। अपने खतों को संदर्भ के पते पर भेजिए? मैं उनका इंतज़ार करूंगा।

अम्लान दासः एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध। चित्र – राजेश यादव।

ज़रा सिर तो खुजलाइए

कटा जग बना वर्ग

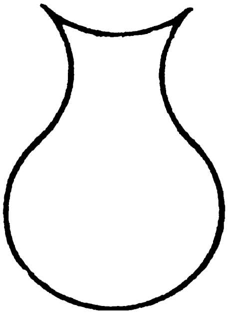

चित्र : 1

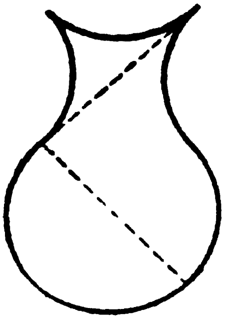

चित्र : 2

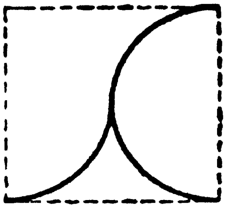

चित्र : 3

पिछले अंक की पहेली में इस जग को दो सीधी रेखाओं के सहारे तीन ऐसे हिस्सों में काटना था कि उन्हें जोड़ दें तो वर्ग की आकृति बन जाए। चित्र-1 जग का है। चित्र-2 में दो रेखाओं से इसे काटा गया है। और तीसरे चित्र में इन टुकड़ों को जोड़कर बना वर्ग है।

कई जवाब ऐसे आए हैं जिनमें दो सीधी रेखाओं से जग के चार हिस्से कर दिए हैं और फिर उनसे वर्ग बनाया है। परन्तु क्योंकि पहेली में तीन हिस्से करने को कहा गया था उसलिए इस उलझन के सही जवाब केवल इन्हीं के हैं:

1. बालकिशन, अध्यापक, ज़िला भिवानी, हरियाणा
2. अमरदीप सिंह, दसवीं, संतनगर, सिरसा, हरियाणा
3. मुकेश त्रिवेदी, आगर, शाजापुर, म.प्र.
4. पीयूष वैष्णव, बारहवीं, नरसिंहगढ़, ज़िला राजगढ़, म.प्र.
5. तुषार ताम्हाणे, सुविद्या, बैंगलोर, कर्नाटक

नई उलझन देखिए पेज नंबर 14 पर

दो संख्याएं

$$\frac{1}{2} \qquad \frac{12}{16}$$

छाया दुबे

किसी ने 1/4 लिख दिया इससे यह साफ नहीं होता कि भिन्न की उसकी समझ पुख्ता है। बल्कि थोड़ा गहराई में उतरने की कोशिश करें – यह जानने की कोशिश करें कि ऊपर लिखे एक का क्या मतलब है, नीचे लिखा चार क्या बताता है, तो समझ आता है कि लोग कहां फंस जाते हैं।

हाल ही मैंने अपने दो साथियों के साथ एक कार्यशाला में भाग लिया। इसमें भाग लेने वाले लोग होशंगाबाद ज़िले के केसला ब्लॉक के आसपास के गांवों के थे। आठवीं से दसवीं पास ये युवा अपने गांवों के सरकारी स्कूलों में बतौर पूरक शिक्षक पढ़ा रहे थे।

इस दौरान उनके साथ कई और मुद्दों के अलावा भिन्न की समझ पर भी बातचीत हुई। साथ ही हमने यह भी समझने का प्रयास किया कि भिन्न अवधारणा को कैसे स्पष्ट किया जाए।

2/4

एक रेखा के ऊपर एक रेखा के नीचे

गणित के सत्र में जैसे ही हमने 'भिन्न क्या है, भिन्न से आप क्या समझते हैं?' जैसा सवाल उठाया कि चुप्पी छा गई। जब उनको बहुत कुरेदा तो एक शिक्षक ने जवाब दिया, "भिन्न में दो संख्याएं होती हैं जो एक रेखा के द्वारा एक-दूसरे से अलग होती हैं। इनमें ऊपर वाली संख्या को अंश तथा नीचे वाली संख्या को हर कहते हैं।" इस शिक्षक के अलावा कहीं और से कोई जवाब नहीं आया। यानी चुनौती हमारे लिए भी थी – भिन्न को कुछ ऐसे तरीके से समझा पाना कि सभी उसे समझ सकें।

आम और बस आम. . . !

हमारी उनसे जो बातचीत हुई वह कुछ इस प्रकार थी :

– "मान लीजिए आपके पास चार आम हैं और आपको इन्हें दो लड़कों

में बराबर-बराबर बांटना है, तब आप क्या करेंगे?"

– "दोनों को दो-दो आम दे देंगे।"

– "यदि दो आमों को दो आदमियों में बांटना है तब प्रत्येक को कितने आम मिलेंगे?"

– "प्रत्येक को एक-एक आम।"

– "और यदि एक आम को दो लोगों में बांटना है तब प्रत्येक को कितना हिस्सा मिलेगा?"

– "आधा-आधा आम।"

– "यह आधा क्या है? इसे अंकों में ब्लैकबोर्ड पर लिखकर दिखाओ।"

कक्षा में फिर सन्नाटा छाया। बहुत ज़ोर देने पर उनमें से एक ने ब्लैकबोर्ड पर आकर 1/2 लिख दिया। इन्हीं से हमने पूछा, "यह क्या है?"

– "आधा है।"

– "किसका आधा?"

– "एक आम का।"

– "एक आम के कितने हिस्से किए?"

– "दो हिस्से।"

– "दो ही हिस्से क्यों किए?"

– "क्योंकि दो लोगों में बांटना है।"

– "यानी जितने लोगों में बांटना है उतने हिस्से करने होंगे न?"

– "हां।"

– "ठीक है। अब बताओ ब्लैकबोर्ड पर दो कहां लिखा है?"

उसने ब्लैकबोर्ड पर लिखे 1/2 के उस हिस्से की ओर इशारा किया जहां 2 लिखा था। हमने कहा ठीक है अब आप इस दो के पास लिखो 'कुल हिस्से'।

फिर हमने पूछा, "प्रत्येक व्यक्ति को कितना हिस्सा मिलेगा।" उसने कहा, "एक हिस्सा।" हमने कहा, "अब इस 1 के पास लिखो, जितने हिस्से मिलना हैं।"

अब सूत्र बन गया:

$$\frac{1}{2} \text{ *यानी* } \frac{\text{जितने हिस्से मिलना है}}{\text{कुल हिस्से}}$$

अब हमने पूछा, "इस सूत्र को देखकर बताओ यदि एक आम आठ लोगों में बांटना है तो प्रत्येक को कितना हिस्सा मिलेगा?"

इस प्रश्न पर फिर सन्नाटा छा गया। हमें लगा कि सीधे पूछने की बजाए बात को शायद इस तरह रखने से काम बने। हमने उनसे पूछा, "अच्छा एक बात बताओ यदि आठ लोगों में बांटना हैं तो कुल कितने हिस्से करने होंगे?"

"आठ हिस्से।"

"तब कुल हिस्से की जगह 8 लिखो।"

एक शिक्षक ने बोर्ड पर एक लाइन खींची और 'हर' के स्थान पर 8 लिख दिया।

"अब चूंकि ये आठ हिस्से आठ लोगों में बांटने हैं तो प्रत्येक को कितना हिस्सा मिलेगा?"

"एक-एक हिस्सा।"

"तब जहां लिखा है 'जितने हिस्से मिलना है' वहां 1 लिख दो।"

तब उसने अंश में 1 लिख दिया।

हमने कहा, "अब इस पूरी संख्या को पढ़ो।"

उन्होंने पढ़ा, "एक बटे आठ।"

हमने कहा, "बिलकुल सही, एक बटे आठ का मतलब होता है कोई चीज़ जो आठ बराबर भागों में बांटी है उनमें से एक हिस्सा।"

फिर हमने पूछा, "अच्छा अब बताओ एक आम को तीन लोगों को बराबर-बराबर बांटा तो प्रत्येक को कितना हिस्सा मिलेगा?"

उनमें से एक ने ब्लैकबोर्ड पर आकर पहले एक लाइन खींची। फिर हर के स्थान पर 3 लिखा और सूत्र देखा फिर कुछ सोचकर अंश में 1 लिखकर कहा, "एक बटा तीन।"

इसके बाद हमने इसी तरह के और भी उदाहरण देकर उनसे अभ्यास करवाए। हमें लगा बात उनकी समझ में आ रही है। पर एक मज़ेदार बात देखने में आ रही थी कि अब हम किसी भी भिन्न जैसे 1/2, 1/3, 1/4 ..... के बारे में पूछते तो वे लोग कहते "एक आम के दो बराबर हिस्सों में से एक", "एक आम के तीन बराबर हिस्सों में से एक".... यानी वे किसी भी भिन्न को बिना आम के समझने की कोशिश ही नहीं कर रहे थे। गोया भिन्न न हुआ आम का बाग हो गया।

जब हमने पूछा, "एक बोरा गेहूं के बीस बराबर हिस्से किए और उसमें से 1/20 भाग रामू को दे दिया तो बताओ 1/20 का मतलब कितना हुआ?"

उन्होंने कहा, "एक आम के बीस बराबर भागों में से एक हिस्सा।" इस घटना को देखकर हमें समझ आया कि एक ही तरह की चीज़ के उदाहरण देने की प्रवृति से हमें भी बचना चाहिए। इसके बाद हमने अलग-अलग चीज़ों का उदाहरण लेते हुए उन सभी भिन्नों को फिर से दोहराया।

कुछ और भिन्न

अभी तक तो हमने साधारण भिन्न की ही बात की थी जिसमें अंश की

संख्या 1 थी। अब उन भिन्नों की बात करनी थी जिनके अंश की संख्या 1 से ज़्यादा यानी 2, 3, 4... आदि हो। इस बार हमने पहले वाले सूत्र में थोड़ा सुधार करके उसे इस तरह लिखा:

जितने हिस्से मिलना है x $\frac{1}{\text{कुल हिस्से}}$

उदाहरण के लिए मान लो आपके पास 4/5 आम है तो इसे कुछ इस तरह से लिखेंगे –

4 x 1/5

इसका मतलब यह होगा की एक आम के पांच बराबर भाग किए और उन पांच हिस्सों में से चार हिस्से आपने लिए तो आपका कुल हिस्सा हुआ 4/5

इसी तरह 5/8 को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

5 x 1/8

इसे पढ़ेंगे, पांच गुणा एक बटे आठ। इसका मतलब है एक चीज़ के आठ बराबर भाग किए। अब इन आठ बराबर हिस्सों में से एक हिस्सा जितना हो, उसका 5 गुना (यानी ऐसे पांच हिस्से मिलकर पांच बटा आठ बनेंगे)।

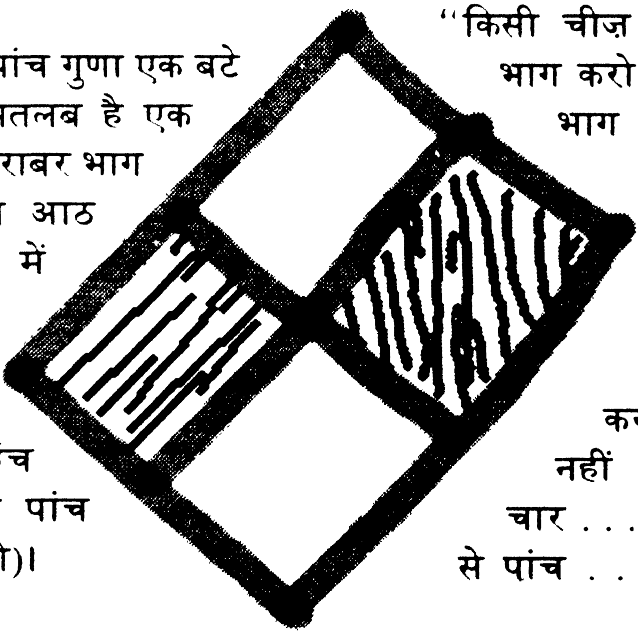

इसी प्रकार कई और उदाहरण देखे जा सकते हैं। जैसे – किसी चीज़ के चार बराबर हिस्से करने पर जितना एक हिस्सा हो ऐसे तीन भाग मिलकर 3/4 बनेगा।

उसके बाद हमने कहा इन सभी उदाहरणों में तुम एक बात तो स्पष्ट देख सकते हो कि भिन्न में हमेशा बराबर भाग ही शामिल होते हैं।

4/5 और 5/4 में फर्क

अब दो संख्याओं पर गौर करते हैं – 4/5 और 5/4 अब तक हुई चर्चा के अनुसार 4/5 का मतलब होता है किसी चीज़ के 5 बराबर भाग करो और उनमें से चार भाग ले लो। इसी तरह से सोचें तो 5/4 का मतलब क्या होगा?

उनमें से एक ने उठकर कहा– "किसी चीज़ के चार बराबर भाग करो और उनमें से 5 भाग ले लो।" बोलने के बाद उसे खुद अपनी ही कही हुई बात गलत लगी। उसने कुछ सोच कर कहा – "नहीं-नहीं . . . पांच में से चार . . . नहीं . . . चार में से पांच . . . . नहीं मुझे नहीं

पता। आप बताओ 5/4 का मतलब क्या है।"

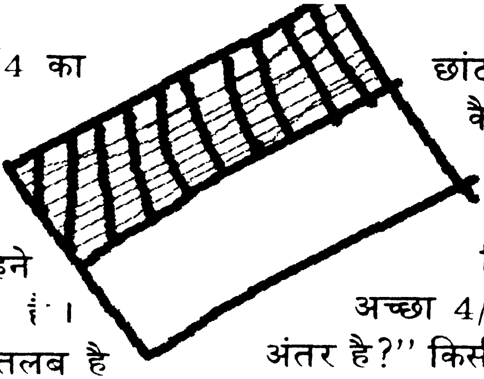

हमने कहा, "तुमने पहले जो कहा वह सही है। बस, कहने का तरीका अलग है। दरअसल 5/4 का मतलब है किसी चीज़ के चार बराबर भाग किए, और वे चारों भाग लेने के साथ-साथ – उतनी ही बड़ी वैसी ही एक और चीज़ के फिर चार बराबर हिस्से किए और – उनमें से भी एक हिस्सा ले लिया। इस तरह तुमने कुल 5 हिस्से लिए। ये प्रत्येक पांच हिस्से बराबर हैं और प्रत्येक हिस्सा उतना ही है जितना उस चीज़ को चार बराबर भागों में बांटने पर एक भाग होगा।"

4/5 और 5/4 में से 4/5 को समझना आसान है क्योंकि 5 हिस्सों में से 4 हिस्से लेना समझ में आता है परंतु 5/4 में लगता है कि यहां कुछ अलग तरह की बात उभरकर आ रही है। यहां 5/4 अनुचित भिन्न और 4/5 उचित भिन्न कहलाते हैं।

हमने उनसे कहा, "इन संख्याओं को देखते हुए उचित और अनुचित भिन्न की क्या पहचान बता सकते हो।" शायद उन्हें हमारा प्रश्न समझ नहीं आया। हमने फिर पूछा, "यदि तुम्हें ढेर सारे भिन्न दिए गए हों और उनमें उचित और अनुचित भिन्न छांटना हो तब तुम उन्हें कैसे पहचानोगे?"

इस बार फिर सन्नाटा [illegible] गया।

फिर हमने कहा, अच्छा 4/5 और 5/4 में क्या अंतर है?" किसी ने बताया, "एक में 4 ऊपर 5 नीचे और दूसरी में 5 ऊपर व 4 नीचे है।"

हमने पूछा, "अच्छा 4 और 5 में से छोटी संख्या कौन-सी है?" जवाब आया, "4"

तब हमने कहा, "अच्छा अब 4 की जगह छोटी संख्या व 5 की जगह बड़ी संख्या लिखकर बताओ।" उन्होंने वैसा ही किया। हमने कहा, "अब इनमें से 4/5 के सामने उचित, 5/4 सामने अनुचित भिन्न लिखो।" उन्होंने लिखा:

$\frac{4}{5}$	$\frac{\text{छोटी संख्या}}{\text{बड़ी संख्या}}$	*उचित भिन्न*
$\frac{5}{4}$	$\frac{\text{बड़ी संख्या}}{\text{छोटी संख्या}}$	*अनुचित भिन्न*

यानी मोटे तौर पर हम उचित भिन्न और अनुचित भिन्न को इस तरह से समझ सकते हैं, कि जिन भिन्नों में अंश की संख्या हर की संख्या से छोटी होती है वे संख्याएं उचित भिन्न कहलाती हैं और जिन भिन्नों में अंश की संख्या हर की संख्या से बड़ी होती है वे अनुचित भिन्न कहलाती हैं।

5/4 समझने का एक और तरीका

अनुचित भिन्नों को एक और तरीके से भी समझाया जा सकता है। इसके लिए फिर से 5/4 पर विचार करते हैं।

5/4 का मतलब है किसी चीज़ के चार बराबर भाग किए, और वे चारों भाग लेने के साथ-साथ – उतनी ही बड़ी वैसी ही एक और चीज़ के फिर चार बराबर हिस्से किए और – उनमें से भी एक हिस्सा ले लिया। इस तरह कुल 5 हिस्से लिए।

छायांकित भाग उस हिस्से को दिखा रहा है जो आपने लिया है।

चूंकि पहले चार हिस्सों में से चारों हिस्से ले लिए तो हमारे बनाए गए सूत्र के अनुसार इसे हम लिखेंगे – 4/4

और दूसरे चार हिस्सों में से 1 हिस्सा लिया तो हमारे सूत्र के अनुसार, इसे लिखेंगे – 1/4

इस तरह आपने कुल 4/4 + 1/4 हिस्से लिए।

अब 4/4 = 1 होता है क्योंकि एक चीज़ के चार बराबर भाग करके चारों ही भाग ले लेने का मतलब है एक पूरी चीज़ ले ली। इसलिए अब उपरोक्त संख्या को हम निम्न प्रकार भी लिख सकते हैं–

$1\frac{1}{4}$ इसे एक सही एक बटा चार पढ़ते हैं।

इस तरह के भिन्नों को मिश्रित भिन्न कहते हैं।

एक सही एक बटा चार का मतलब है 1 पूरा और दूसरा एक चौथाई। इसी तरह $3\frac{1}{2}$ का मतलब है, 3 पूरी वस्तुएं और एक आधी वस्तु।

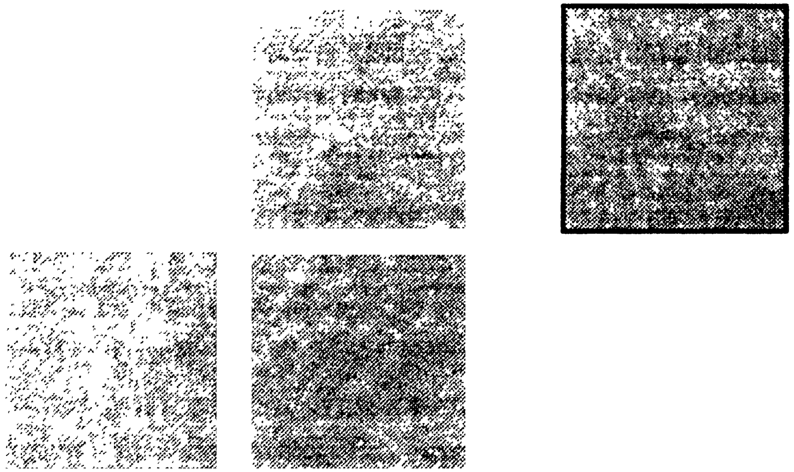

छाया दुबे: एकलव्य द्वारा प्रकाशित स्रोत फीचर सेवा में कार्यरत हैं।

धरती का कांपना . . .

माधव केलकर

22 मई 1997, जबलपुर में भूकम्प का ज़ोरदार झटका आया। अखबारों में भी कुछ दिनों तक भूकम्प की चर्चा होती रही और बाद में दूसरी खबरों ने उसकी जगह ले ली। लेकिन मुझे रह-रहकर एक बात कचोटती रही कि सैंकड़ों किलोमीटर दूर बैठे वैज्ञानिकों को भूकम्प की इतनी सटीक जानकारी कैसे मिल जाती है और वे इतने विश्वास के साथ भूकम्प का केन्द्र और भूकम्प की तीव्रता किस तरह बता पाते हैं।

कुछ पूछताछ की तो पता चला कि इन वैज्ञानिकों के पास साइज़्मोमीटर नामक उपकरण होता है जो धरती के कम्पनों का एक ग्राफ बनाता है (कुछ -कुछ वैसा ही ग्राफ जैसा डॉक्टर द्वारा लिए गए हृदय के ई. सी. जी. में दिखता है)। यह ग्राफ ही वह प्रमुख औज़ार है जो भूकम्प के बारे में इतनी सटीक जानकारी देता है।

साइज़्मोमीटर के बारे में अभी इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि यह यंत्र धरती के कम्पनों को एक बेलनाकार ड्रम (घूमते हुए) पर लिपटे कागज़ पर रिकॉर्ड करता है। यदि कागज़ पर बनने वाली लकीरें सीधी हैं तो इसका मतलब है कि अभी धरती में कम्पन नहीं हो रहे, यदि कागज़ पर कोई कम्पन दिखते हैं तो इनका विस्तृत

अध्ययन करने पर बहुत-सी जानकारी निकाली जा सकती है।

भूकम्प तरंगें

आमतौर पर भूकम्प का उद्गम केन्द्र* (Focus) 10 किलोमीटर से 700 किलोमीटर की गहराई में स्थित होता है। यहीं से भूकम्प तरंगें निकलकर सभी दिशाओं में फैलती हैं। साइज़्मोमीटर की मदद से इन भूकम्प तरंगों को रिकॉर्ड करके और फिर इन तरंगों का अध्ययन करने पर ही कई बातें समझी जा सकीं। भूकम्प में मुख्य रूप से तीन तरंगें चलती हैं – P, S, L (इन तरंगों पर और जानकारी के लिए देखिए बॉक्स)।

* धरती के भीतर जहां भूकम्प की घटना घटती है उस स्थान को भूकम्प का केन्द्र (Focus) कहते हैं। फोकस के ठीक ऊपर ज़मीनी सतह के बिन्दु को अधिकेन्द्र (Epicentre) कहते हैं।

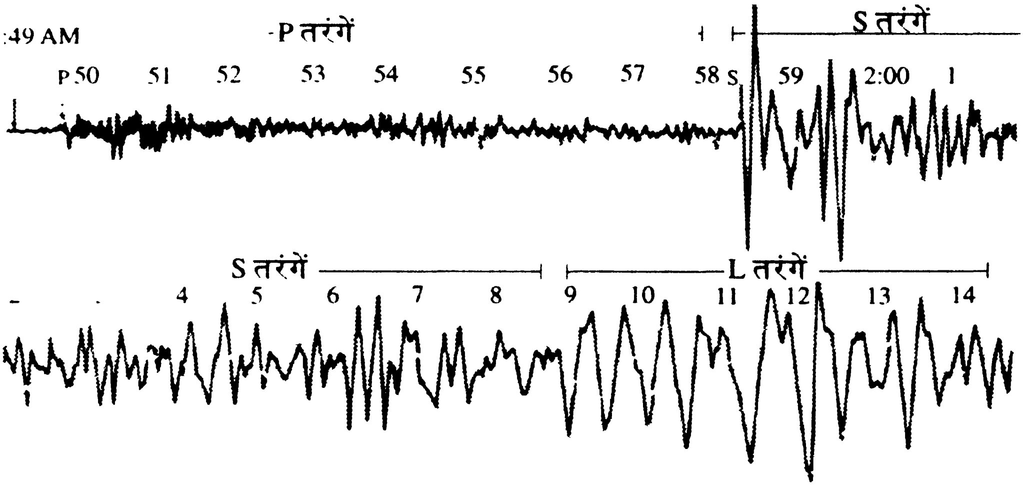

जिस तरह पास से गुज़रती हुई रेलगाड़ी की धड़धड़ाहट को हमारे पैर महसूस करते हैं उसी तरह साइज़्मोमीटर भूकम्प के केन्द्र से उत्पन्न कम्पनों को महसूस करता है। ये कम्पन P, S और L तरंगों के रूप में पहुंचते हैं। P, S, L तरंगों का वेग अलग-अलग होता है इसलिए साइज़्मोग्राफ में दर्ज़ तरंगों में भी एक क्रम होता है। सबसे पहले P, फिर S और सबसे आखिर में L तरंगें। (साथ में चल रही घड़ी को भी देखिए) भूकम्प केन्द्र के पास वाले साइज़्मिक-स्टेशन पर ये तीनों तरंगें जल्दी पहुंच जाती हैं लेकिन जैसे-जैसे भूकम्प केन्द्र से साइज़्मिक-स्टेशन की दूरी बढ़ने लगती है तरंगों को पहुंचने में लगने वाला समय भी बढ़ता जाता है। इस रिकॉर्ड को साइज़्मोग्राम कहते हैं।

किसी भूकम्प को भूकम्प केन्द्र के नज़दीक रिकॉर्ड किया जाए तो साइज़्मोग्राम में काफी ज़्यादा उतार-चढ़ाव होते हैं लेकिन इसी भूकम्प को 1000 किलोमीटर दूर रिकॉर्ड किया जाए तो वहां बने साइज़्मोग्राम में उतार-चढ़ाव काफी कम होते हैं।

लगातार किए गए अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि P और S तरंगों के रास्ते में यदि ज़्यादा घनत्व वाली चट्टानी परतें आती हैं तो इन तरंगों की गति बढ़ जाती है और कम घनत्व वाली परतें आ जाएं तो तरंगों की गति कम हो जाती है। साथ ही ये दोनों तरंगें सघन से विरल या विरल से सघन माध्यम में जाने पर परावर्तित और अपवर्तित भी होती हैं।

इस सब के बावजूद भी इन तरंगों की पृथ्वी की विभिन्न परतों में गति

तीन किस्म की तरंगें

P **तरंगें** – इन तरंगों को पुश-पुल तरंगें भी कहते हैं जो धरती के भीतरी हिस्सों से होती हुई सतह तक पहुंचती हैं। ये ठोस, द्रव और गैस तीनों माध्यमों में से होकर गुज़र सकती हैं। जो भी पदार्थ इनके मार्ग में आता है उनमें एक क्रम से दबाव (Compression) और विरलीकरण (Rarefaction) होता है और तरंग आगे बढ़ती है। जिस तरह लोहे की सलाख के एक छोर को किसी हथौड़े की मदद से धीरे से ठोका जाता है तो ध्वनि तरंगें दूसरे छोर तक पहुंच जाती हैं उसी तरह 'पी' तरंगें आगे बढ़ती हैं। 'पी' तरंगों की औसत रफ्तार 5.5 किमी/सेकेंड होती है।

S **तरंगें** – ये भी भूकम्प के फोकस से चलकर सतह तक आती हैं। 'एस' तरंगें केवल ठोस माध्यम में से गुज़र सकती हैं। ये जिस माध्यम से गुज़रती हैं उस माध्यम के कण इनकी आगे बढ़ने की दिशा के लम्बवत गति करते हैं। इन्हें समझने के लिए किसी दीवार में लगी कील से रस्सी बांधकर रस्सी का एक छोर अपने हाथ में थाम लीजिए। फिर धीरे-धीरे रस्सी को ऊपर-नीचे या दाएं-बाएं हिलाते हुए उसमें लहरें पैदा कीजिए। आप देखेंगे कि लहरें दीवार की ओर जा रही हैं, परन्तु रस्सी दरअसल उनकी लम्बवत दिशा में गति कर रही है। 'एस' तरंगों की औसत गति 3 किमी/सेकेंड होती है।

L **तरंगें या सतही तरंगें** – ये तरंगें भी 'एस' तरंगों की तरह ही हैं, बस फर्क इस बात का है कि ये ज़मीन की सतह पर पानी की लहरों की तरह गति करती हुई आगे बढ़ती हैं। भूकंप में सबसे ज़्यादा नुकसान सतही तरंगों के कारण होता है। इन तरंगों की गति को समझने के लिए तालाब में पत्थर फेंकने की घटना को याद करना होगा। जैसे ही पत्थर पानी की सतह पर गिरता है कुछ लहरें एक गोल घेरा बनाती हुई किनारे की ओर आने लगती हैं। इस प्रक्रिया में एक लहर उठती है, गिरती है; फिर उठती है, गिरती है। इस तरह गोल घेरा बढ़ता जाता है। यदि एक छोटा-सा कॉर्क का टुकड़ा इस घेरे में डाल दिया जाए तो कॉर्क का टुकड़ा अपनी जगह ही ऊपर-नीचे गति करता रहता है। यानी माध्यम के कण यहां भी तरंग से लम्बवत गति कर रहे हैं। L तरंगों की रफ्तार S तरंगों से कुछ कम होती है।

को नापकर यह मालूम किया गया कि किसी भूकम्प के केन्द्र से कितने समय में तरंगें कितना फासला तय कर लेंगी। इस गणना के बाद समझ में आया कि समय के हिसाब से दूरी तय करने का यह करतब ये दोनों तरंगें भूकम्प के अधिकेन्द्र से लगभग 11000 किलोमीटर की दूरी तक दिखाती हैं। लेकिन 11000 किलोमीटर के बाद जो कुछ घटित होता है वह काफी रोमांचक है। अब तक समय की पाबंद ये तरंगें उसके बाद अचानक गायब

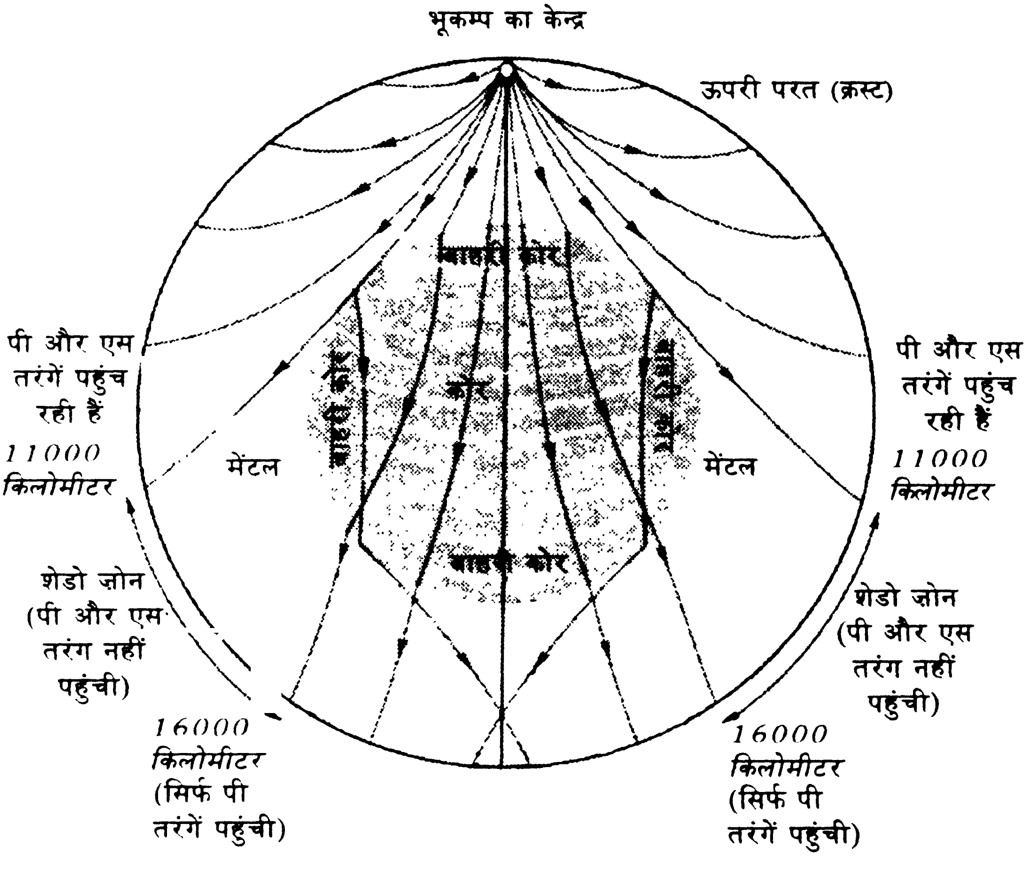

यहां बिन्दु 0 भूकम्प का उद्‌गम केन्द्र है। मान लीजिए पूरी धरती पर साइज़्मोमीटर का जाल बिछा हुआ है जो 0 पर आए भूकम्प की सूचना दे रहे हैं। 11000 किलामीटर की दूरी तक स्थित साइज़्मिक-स्टेशनों तक तो P और S तरंगें पहुंचीं लेकिन 11000 किलोमीटर के बाद पी और एस में से कोई भी तरंग नहीं पहुंची। चित्र में दिखाया गया है कि 11000 किलोमीटर की दूरी के बाद पी और एस तरंगों को धरती के कोर में से होकर गुज़रना पड़ता है। बाहरी कोर आंशिक तरल होने के कारण एस तरंगें तो वहीं खत्म हो जाती हैं लेकिन पी तरंगें अपवर्तित होकर कोर के भीतरी भाग की ओर चल देती हैं, और अपने पहले वाले रास्ते से हट जाती हैं। 16000 किलोमीटर की दूरी पर फिर एक बार P तरंग पहुंचती है – लेकिन निर्धारित समय से तीन मिनट देरी से। वह क्षेत्र जहां P और S तरंग में से कोई भी तरंग नहीं पहुंचती, उसे 'शेडो ज़ोन' नाम दिया गया है।

हो जाती हैं। लगभग 16000 किलोमीटर की दूरी पर ये P तरंगें फिर से रिकॉर्ड होने लगती हैं। परन्तु वहां तक पहुंचने में इन्हें जितना समय लगना चाहिए था उससे उसे तीन मिनट ज़्यादा लगता है। और S तरंग अभी भी गायब है। जब ऐसा पहली बार हुआ तो सारे भूकंप वैज्ञानिक भौंचक्के रह गए। ऐसा क्यों हुआ कुछ समझ में नहीं आ रहा था। धीरे-धीरे यह समझ बनी कि साइज़्मोग्राम की सहायता से उन्होंने न सिर्फ भूकम्प को ही रिकॉर्ड किया है, बल्कि पृथ्वी की भीतरी संरचना के बारे में बहुत-सी जानकारी हासिल हुई है। प्रयोगों से यह भी मालूम हुआ कि P तरंगें तरल पदार्थों में से गुज़रने पर धीमी हो जाती हैं। S तरंगें तरल पदार्थ को पार नहीं कर पाती और भीतर ही खत्म हो जाती हैं। बाद में यह समझ बनी कि धरती का केन्द्रीय भाग (Core) पूर्णत: ठोस नहीं है बल्कि कोर की बाहरी परत आंशिक रूप से तरल है। 11000 किलोमीटर तक यात्रा में ये तरंगें धरती के ऊपरी ठोस भाग (क्रस्ट और मेंटल) में से होकर गुज़र रही थीं मगर 11000 किलोमीटर के बाद की दूरी तक पहुंचने के लिए इन्हें धरती के केन्द्रीय भाग यानी कोर में से गुज़रना पड़ता है। वहां बाहरी तरल पदार्थ को पार करते हुए इन दोनों तरंगों का यह हाल हो जाता है।

भूकम्प अधिकेन्द्र खोजना

जब धरती पर संवेदनशील साइज़्मोमीटर का एक जाल बिछा दिया गया तो यह गणनाएं हो गई कि किसी एक दूरी को तय करने में P तरंगों को कितना समय लगता है और S तरंगों को कितना समय लगेगा। किसी दूरी को तय करते हुए दोनों तरंगों के बीच के समयांतर को आधार बनाकर एक ग्राफ बनाया गया (ग्राफ अगले पेज पर)। यह छोटा-सा ग्राफ किसी भी साइज़्मो-स्टेशन के लिए अहम भूमिका निभाता है।

ग्राफ का इस्तेमाल कर साइज़्मो-स्टेशन से भूकम्प अधिकेन्द्र की दूरी पता करना काफी आसान है। जैसे ही किसी स्टेशन पर 'पी' तरंगें पहुंचने लगती हैं तुरंत समय नोट किया जाता है। उसके बाद जब 'एस' तरंगें पहुंचती हैं तो फिर से समय नोट करके 'पी' और 'एस' के पहुंचने के बीच के समयांतर को निकाला जाता है। इस अंतर को ग्राफ पर प्लॉट किया जाता है। यहां दिए गए उदाहरण में 'एस' और 'पी' का समयांतर 7 मिनट 58 सेकेंड है। इस अंतर को ग्राफ में प्लॉट करने के बाद एक नज़र दूरी वाले अक्ष पर दौड़ाने पर दिखेगा कि यह अंतर दूरी वाले अक्ष को 7450 किलोमीटर पर काट रहा है। यानी इस स्टेशन से भूकम्प का केन्द्र 7450

भूकम्प के केन्द्र का पता लगाना

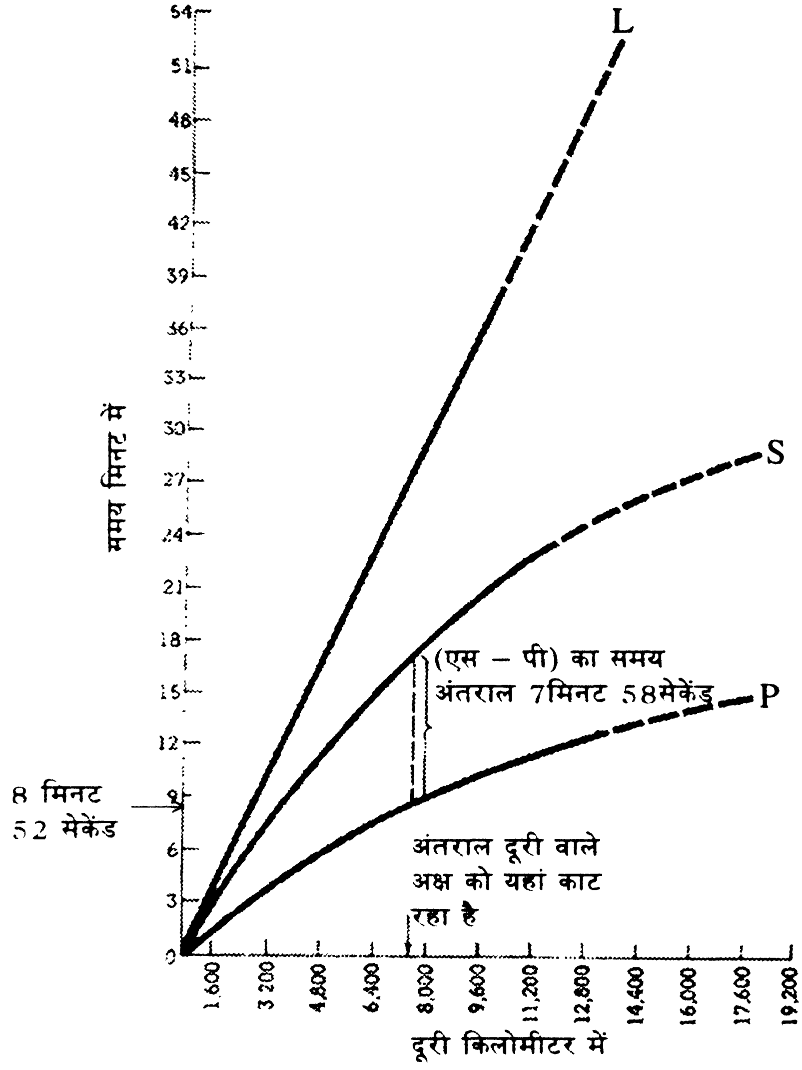

यहां 'पी' तरंग और 'एस' तरंग के प्रथम आगमन के समय-अंतराल के आधार पर यह वक्र खींचा गया है। इसका इस्तेमाल भूकम्प का उद्गम निकालने के लिए किया जाता है। लेख पढ़ते हुए ग्राफ को साथ-साथ देखिए।

किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। अब एक नज़र फिर से ग्राफ पर। देखिए समयांतर वाली पतली डॉटेड लाइन 'पी' तरंगों वाली रेखा को कहां छूती है। इस सम्पर्क बिन्दु के सामने समय वाले अक्ष पर समय देखिए। यह समय लगभग 8 मिनट 52 सेकेंड है। यानी 'पी' तरंगों को यहां तक का रास्ता तय करने में 8 मिनट 52 सेकेंड का समय लगा है। इससे पता चल जाता है कि भूकम्प की घटना कब घटी थी।

बतौर उदाहरण, साइज़्मो-स्टेशन पर 'पी' तरंग दोपहर तीन बजकर 9 मिनट और 6 सेकेंड पर पहुंची और तरंग ने यहां तक आने में 8 मिनट 52 सेकेंड का समय लिया है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि दोपहर तीन बजकर 14 सेकेंड पर भूकम्प आया था। इस भूकम्प की सूचना (पी तरंगों के रूप में) उक्त स्टेशन पर तीन बजकर 9 मिनट और 6 सेकेंड पर आई। इस 8 मिनट 52 सेकेंड के समय में 'पी' तरंगें 7450 किलोमीटर का फासला तय करके यहां तक पहुंची हैं यानी भूकम्प का केन्द्र 7450 किमी. की दूरी पर था। अभी हमने सिर्फ दूरी का ही पता लगाया है, दिशा का नहीं।

वैसे किसी भी भूकम्प के अधिकेन्द्र का सही-सही निर्धारण करने के लिए कम-से-कम तीन अलग-अलग जगहों के साइज़्मोमीटर पर भूकम्प का दर्ज होना ज़रूरी है। इन तीनों जगहों पर पी और एस तरंगों के प्रथम आगमन के बीच के अतंराल को ग्राफ में प्लॉट करके दूरी का अनुमान लगाते हैं। फिर

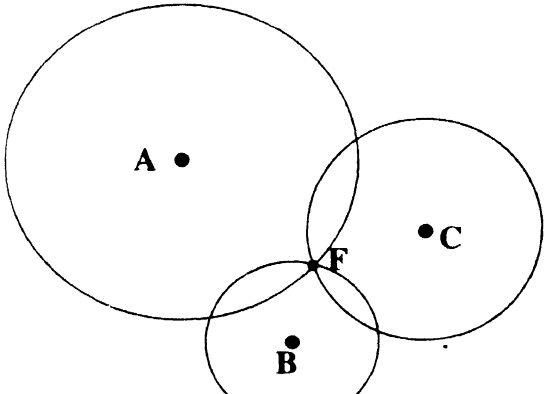

भूकम्प का अधिकेन्द्र पता करने के लिए कम-से-कम तीन साइज़्मो-स्टेशनों की ज़रूरत होती है। यहां तीन काल्पनिक स्टेशन ए, बी, और सी दिखाए गए हैं। इनमें से प्रत्येक स्टेशन पर पी और एस तरंगों के प्रथम आगमन के बीच के समय अंतराल के आधार पर भूकम्प केन्द्र से दूरी का अनुमान लगाकर, उस दूरी के बराबर त्रिज्या का एक-एक वृत्त खींचते हैं। जिस बिन्दु पर ये तीनों वृत्त एक-दूसरे को काटते हैं वहां भूकम्प का अधिकेन्द्र होना चाहिए, जिसे यहां बिन्दु 'एफ' से दर्शाया गया है।

मैग्नीटयूड पता करना

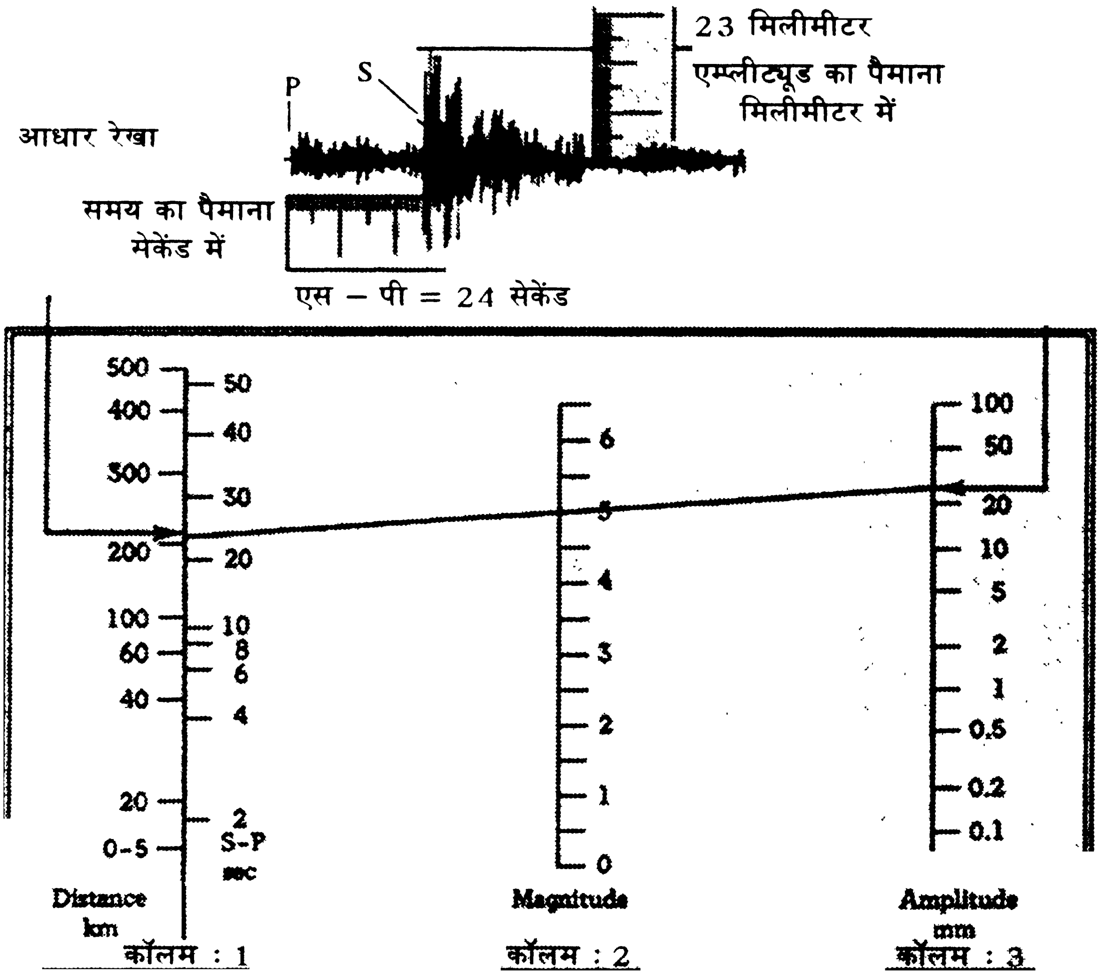

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि किसी साइज़्मो-स्टेशन में रिकॉर्ड किए गए भूकम्प का एक साइज़्मोग्राम आपके हाथ में आ गया है। और आप इसकी मदद से भूकम्प केन्द्र की दूरी और भूकम्प का मैग्नीटयूड पता करना चाहते हैं।

ऊपर भूकम्प का किसी एक स्टेशन से प्राप्त ग्राफ दिया गया है। इस ग्राफ के साथ कुछ जानकारियां दी गई हैं। जैसे कब 'पी' तरंग आई और कब 'एस' तरंग का आगमन हुआ। साथ में दो पैमाने भी दिए गए हैं। इनमें से एक समय दिखा रहा है जिसमें समय को सेकेंड में नापा जा रहा है। और दूसरा स्केल तरंगों का उतार-चढ़ाव (Amplitude) दिखा रहा है, जिसे मिलीमीटर में नापा गया है।

ग्राफ के नीचे तीन स्तंभ बने हैं। इनमें से पहले कॉलम में बाईं ओर दूरियां दिखाई

गई हैं। इसी पहले स्तम्भ में दाईं ओर 'एस' और 'पी' तरंगों के बीच के समय-अंतराल का पैमाना प्रदर्शित किया गया है।

दूसरा कॉलम मैग्नीट्यूड से संबंधित है जो हमें पता करना है। इसमें 1 से 10 तक अंक होते हैं (यहां सिर्फ 6 तक ही अंक दिखाए गए हैं)।

चित्र में तीसरा कॉलम 'एस' तरंग का आयाम यानी एम्प्लीट्यूड दिखा रहा है जिसका संबंध साइज़्मोग्राम में आए अधिकतम उतार-चढ़ाव से है। यह पैमाना मिलीमीटर में है।

चित्र को समझ लेने के बाद अब देखते हैं कि इसके आधार पर रिक्टर स्केल पर भूकम्प का मैग्नीट्यूड कैसे मापते हैं। सबसे पहले 'पी' और 'एस' तरंगों के बीच समय-अंतराल पता लगाना है। साइज़्मोग्राम में समय वाले पैमाने से पता करते हैं कि 'पी' तरंगें कब आई थीं और 'एस' तरंगें कब आईं। 'एस' तरंग के आगमन समय में से 'पी' तरंग का आगमन समय घटाने से 'एस' और 'पी' तरंग के बीच का समय अंतराल मिल जाता है। इस साइज़्मोग्राम में यह अंतराल 24 सेकेंड है।

तत्पश्चात समय अंतराल की यह जानकारी चित्र के पहले स्तंभ में दर्शा देते हैं यानी पहले कॉलम के दाहिनी ओर 24 सेकेंड पर एक निशान लगा देते हैं।

अब एक बार फिर साइज़्मोग्राम पर नज़र डालते हैं। इस बार 'एस' तरंगों का अधिकतम उतार-चढ़ाव यानी आयाम नापेंगे। इसे हम आधार रेखा से नापते हैं। इस साइज़्मोग्राम में 'एस' तरंग का अधिकतम आयाम 23 मिलीमीटर है। चित्र के तीसरे कॉलम के पैमाने पर 23 मिलीमीटर पर एक निशान लगा देते हैं।

हम पहले स्तंभ पर 24 सेकेंड पर एक निशान लगा चुके हैं। इसी तरह तीसरे स्तंभ पर 23 मिलीमीटर पर भी निशान लगा दिया है। बस अब भूकम्प का मैग्नीट्यूड और दूरी मालूम करना है। बहुत ही आसान है आगे की प्रक्रिया – 24 सेकेंड और 23 मिलीमीटर वाले निशानों को जोड़ते हुए एक सीधी रेखा खींचिए। यह रेखा दूसरे स्तंभ को जहां भी काट रही है वही है भूकम्प का मैग्नीट्यूड। चित्र से स्पष्ट है कि इस भूकम्प का मैग्नीट्यूड 5 है।

पहले स्तंभ में समय के साथ-साथ दूरी भी दी है। 24 सेकेंड के सामने दर्शाइ गई दूरी 210 किलोमीटर है। अब हम बता सकते हैं कि हमारे साइज़्मो स्टेशन से लगभग 210 किलोमीटर की दूरी पर 5.0 मैग्नीट्यूड का भूकम्प आया है। यदि इस भूकम्प का दो और साइज़्मो-स्टेशन के आंकड़ों से मिलान किया जाए तो हम भूकम्प का अधिकेन्द्र (Epicentre) भी बता सकते हैं।

अंत में एक सवाल आपके लिए – किसी साइज़्मोग्राम से पता चला कि 'एस' और 'पी' तरंगों के बीच समय-अंतराल 11 सेकेंड है और तरंगों का अधिकतम आयाम 1 मिलीमीटर। भूकम्प का मैग्नीट्यूड और भूकम्प केन्द्र की दूरी क्या होगी?

इस दूरी को त्रिज्या मानते हुए वृत्त खींचते हैं। ये तीनों वृत्त जिस बिन्दु पर एक-दूसरे को काटते हैं उसे भूकम्प का अधिकेन्द्र मानते हैं।

भूकम्प के पैमाने

भूकम्प की तीव्रता बता पाना एक खासी समस्या रही है। समय-समय पर भूकम्प की तीव्रता बताने के लिए स्केल बनाए जाते रहे हैं। शुरुआती स्केल विनाश की प्रकृति, कम्पनों की अवधि, कम्पनों की संख्या और ज़मीन में आए परिवर्तनों आदि पर आधारित थे। इटली के भूकम्प वैज्ञानिक एल. मर्केली ने 1902 में एक स्केल सुझाया जिसे प्रबलता स्केल (Intensity Scale) कहा गया। यह स्केल 1 से 12 तक था। प्रत्येक अंक पर उस प्रबलता का भूकम्प आने पर महसूस होने वाले अनुभव और संभावित नुकसान का ब्यौरा दिया होता था।

कई बार हम यह धारणा मन में बैठा लेते हैं कि जितनी ज़्यादा तीव्रता का भूकम्प होगा उतना ही ज़्यादा विनाश होगा। वास्तव में किसी स्थान पर विनाश या नुकसान भूकम्प अधिकेन्द्र (Epicentre) से दूरी, जनसंख्या का घनत्व, मकानों-भवनों की बनावट तथा इस्तेमाल की गई सामग्री, ज़मीन की प्रकृति (कड़ी चट्टानों के मुकाबले भुरभुरी मिट्टी की परत पर ज़्यादा नुकसान होता है) आदि बातों पर निर्भर करता है। इसके साथ-साथ एक और महत्वपूर्ण कारक है, भूकम्प का केन्द्र कितनी गहराई में है। क्योंकि जितनी ज़्यादा गहराई पर फोकस होगा 'एल' तरंगें उतनी ही कम ऊर्जा वाली होंगी, यानी तबाही भी कम होगी। जैसे-जैसे हम एपिसेंटर से दूर जाते हैं भूकम्प की तीव्रता भी घटती जाती है।

जिन दिनों साइज़्मोमीटर नहीं होते थे तब तबाही के आधार पर ही एपिसेंटर का अंदाज़ लगाया जाता था। सबका अनुभव था कि सबसे ज़्यादा तबाही एपिसेंटर पर ही देखी जाती है। यानी भूकम्प का केन्द्र, एपिसेंटर के ही नीचे है। उन दिनों भूकम्प केन्द्र का अनुमान लगाते हुए एक और दिलचस्प चीज़ सामने आई कि एक समान तीव्रता (या तबाही वाले) वाले स्थानों को जोड़ते हुए गोलाकार रेखाएं (कंटूर रेखाओं की तरह) खींची जा सकती हैं। इन रेखाओं को समभूकम्प रेखाएं (Isoseismal Lines) कहते हैं।

यद्यपि हमें भूकम्प की तीव्रता ही पता करना है और प्रबलता पैमाने से भी भूकम्प की तीव्रता (तबाही के माध्यम से) पता चल ही रही है। लेकिन सिर्फ सतही निरीक्षण पर आधारित होने के कारण इस विधि से कई बार हमारे अनुमान गड़बड़ा भी जाते हैं।

क्योंकि तबाही का सीधा संबंध तीव्रता से कम है बल्कि यह जनसंख्या के घनत्व, मकानों की बनावट जैसी बातों पर ज़्यादा निर्भर है। इसलिए एक और पैमाना विकसित किया गया जिसे 'रिक्टर स्केल' कहा गया। साइज़्मोमीटर से प्राप्त रिकॉर्ड के आधार पर सी. एफ. रिक्टर ने 1935 में एक स्केल बनाया जो भूकम्प के दौरान पैदा होने वाली पी, एस, एल तरंगों के अधिकतम उतार-चढ़ाव (Amplitude) के आधार पर तैयार किया गया था। इससे हम भूकम्प के दौरान निकली ऊर्जा को नापते हैं।

रिक्टर की इस विधि में साइज़्मोग्राम के कुछ तयशुदा हिस्सों से तरंगों का आयाम (एम्प्लीट्यूड) नापते हैं। इस विधि की सबसे खास बात यह है कि इस नाप-जोख में भूकम्प से साइज़्मो-स्टेशन की दूरी कहीं भी बाधक नहीं बनती।

रिक्टर का स्केल लॉगरिधम पर आधारित है। इसमें 1 से 10 तक अंक दिए होते हैं। साइज़्मोग्राम में दर्ज़ उतार-चढ़ाव के हिसाब से भूकम्प के दौरान निकली हुई ऊर्जा की मात्रा भी बदलती है। स्केल पर प्रत्येक पूर्णांक अपने से पहले वाले पूर्णांक से दस गुना ज़्यादा होता है। इसलिए मैग्नीट्यूड 8.0 का भूकम्प, मैग्नीट्यूड 4.0 वाले भूकम्प से दो गुना नहीं बल्कि 10,000 गुना शक्तिशाली होगा।

कुछ ही समय में रिक्टर का स्केल लोकप्रिय हो गया। परन्तु इस दौरान कुछ नए स्केल बनाए गए जिनमें से काफी सारे अभी भी इस्तेमाल हो रहे हैं। इन्ही प्रचलित पैमानों में से एक पैमाने में मैग्नीट्यूड 'पी' तरंगों को आधार बनाकर नापते हैं। साइज़्मोग्राम में 'पी' तरंगों का वह हिस्सा चुनते हैं जहां आवर्तकाल एक सेकेंड होता है। इसी तरह एक और स्केल सतही तरंगों के आधार पर बनाया गया है। इसमें साइज़्मोग्राम में सतही तरंगों का वह हिस्सा चुनते हैं जिसका आवर्तकाल 20 सेकेंड हो।

भूकम्प से निकलने वाली ऊर्जा के संदर्भ में यह तथ्य भी तुलना के लिए उपयोगी हो सकता है कि दुनिया के पहले परमाणु बम परीक्षण (न्यू मैक्सिको, जुलाई 1945) में निकली ऊर्जा, 5.0 मैग्नीट्यूड वाले भूकम्प में निकलने वाली ऊर्जा के बराबर थी। और एक मैगाटन वाले एटम बम से 6.0 मैग्नीट्यूड वाले भूकम्प के बराबर ऊर्जा निकलती है। हालांकि यह भी सही है कि एटम बम में ऊर्जा एक जगह केन्द्रित रहती है जबकि भूकम्प में फैली होती है। इसलिए एक समान मैग्नीट्यूड वाले भूकम्प और एटम बम विस्फोट के परिणाम भी भिन्न-भिन्न होंगे।

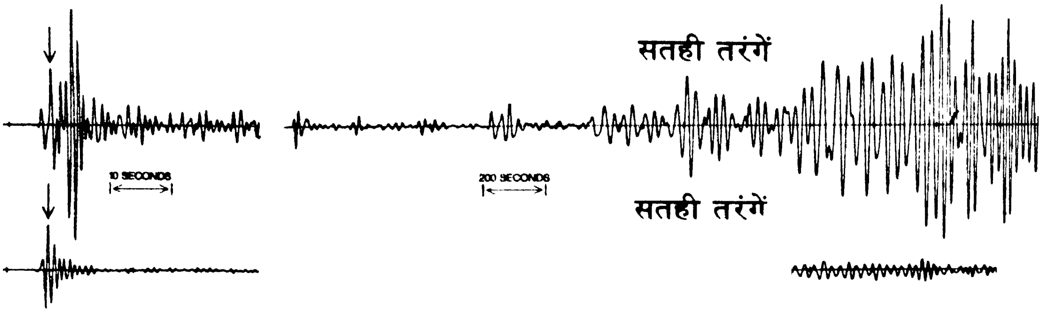

इनमें ऊपर बना साइज़्मोग्राम भूकम्प का है और नीचे बम का। दोनों की तीव्रता रिक्टर स्केल पर एक-सी है। परन्तु फिर भी क्या इन दोनों में आपको कुछ फर्क दिखता है?

भूकम्प या परमाणु बम

जब परमाणु बम की बात छिड़ ही गई है तो यह सवाल भी उठता है कि भूकम्प वैज्ञानिकों को यह कैसे पता चलता है कि साइज़्मोमीटर में दर्ज़ साइज़्मोग्राम भूकम्प का है या किसी परमाणु बम के परीक्षण का?

अमरीका-रूस के शीत-युद्ध के दौरान एक-दूसरे के बम परीक्षणों पर नज़र रखने की नीयत से विकसित हुई विधियों में साइज़्मोग्राम का बहुत ही बारीकी से विवेचन किया जाने लगा।

ऊपर दिए गए चित्र में से पहला साइज़्मोग्राम किसी भूकम्प का है तथा दूसरा परमाणु बम परीक्षण का। इन दोनों को एक समान दूरी से रिकॉर्ड किया गया है तथा 'पी' तरंग को आधार मानकर निकाला गया दोनों का मैग्नीट्यूड भी समान है। यहां दोनों ग्राफ की तुलना करने पर यह बहुत साफतौर पर दिखता है कि भूकम्प में अच्छे से सतही तरंगें विकसित होती हैं जबकि बम परीक्षण में सतही तरंगें बहुत कमज़ोर होती हैं।

इसके अलावा कई और तकनीकी बारीकियां हैं जैसे पहले 'पी' या 'एस' तरंगों के आयाम को आधार बनाकर मैग्नीट्यूड निकालते हैं। इस मैग्नीट्यूड की तुलना सतही तरंगों से प्राप्त मैग्नीट्यूड से करते हैं। अब दोनों के बीच एक अनुपात पता किया जाता है। लगातार किए गए विश्लेषणों से पता चला है कि भूकम्प में तो यह अनुपात सामान्य होता है लेकिन बम परीक्षण में यह अनुपात काफी कम होता है।

इस मुद्दे पर और भी बातचीत हो सकती है। कुछ आपके भी सवाल होंगे लेकिन शेष चर्चा अगले किसी अंक के लिए मुल्तवी करते हैं।

माधव केलकर: संदर्भ पत्रिका में कार्यरत।

बल और ऊर्जा-3

ऊर्जा ही है सब कुछ

एस. बी. वेलणकर

पिछले दो अंकों में हमने गुरुत्वाकर्षण और कूलम्ब के बल के बारे में पढ़ा। लेख की इस अंतिम कड़ी में कूलम्ब के बल की बात पूरी करते हुए दो अन्य बलों और उनके आपसी रिश्ते की चर्चा है।

हमें मालूम है कि सामान्यत: किसी भी परमाणु में धन आवेश और ऋण आवेश बराबर मात्रा में होता है यानी कि परमाणु उदासीन है। हमने यह भी देखा कि इसीलिए उनमें असंख्य इलेक्ट्रॉन व प्रोटोन होते हुए भी हमारे आसपास की अधिकतर वस्तुएं उदासीन होती हैं।

लेकिन अगर दो परमाणुओं को पास-पास लाएं तो उनके बीच में क्या होता है? कई परमाणुओं में धन और ऋण आवेशों के केन्द्र एक जगह नहीं होते – थोड़ा अलग-अलग हटकर होते हैं। यानी कि समस्त धन आवेशों का परिणामी बल जिस बिंदु पर होता है, समस्त ऋण आवेशों का परिणामी बल ठीक उसी बिंदु पर नहीं होता। इसे डायपोल यानी द्विध्रुव या युग्मध्रुव कहते हैं। इस वजह से ये परमाणु ऐसे व्यवहार करते हैं मानो कि उनका एक छोर ऋण आवेशित है और दूसरा धन आवेशित।

अगर परमाणु में युग्मध्रुव न भी हो तो भी जब दो परमाणुओं को पास-पास लाएं तो इनके आवेश खिसक जाते हैं और इनमें डायपोल उत्पन्न हो जाता है।

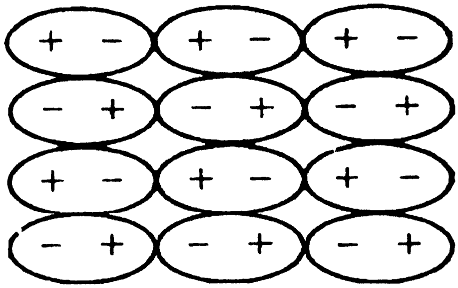

डाइपोल अणुओं का जमाव

इस वजह से दो परमाणुओं को पास लाने पर उनके बीच बल लगता है। चूंकि प्रत्येक परमाणु एक युग्मध्रुव है इसलिए यह बल दो युग्म के बीच

लगने वाला बल है। इसे ही आण्विक बल या मोलेक्यूलर फोर्स कहते हैं। यह आण्विक बल अजीब है – बहुत दूर से देखने पर यह है ही नहीं, दूरी कम हो तो आकर्षण का बल लगता है – मगर और पास आओ तो विकर्षण का बल लगने लगता है! यानी कि बहुत पास आने पर आण्विक बल, कूलम्ब के बल से एकदम फर्क व्यवहार करने लगता है।

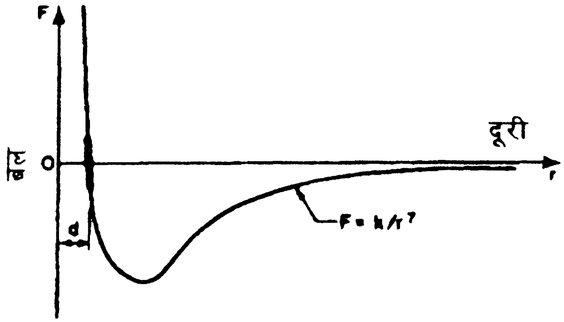

दो परमाणुओं के बीच दूरी और बल का ग्राफ

नाभिक के अंदर

यह थी कूलम्ब के बल की और उसकी वजह से पैदा होने वाले आण्विक बल की बात जिसकी सहायता से हम धरातल की घटनाओं को समझ सकते हैं। इसके अलावा पिछले अंकों में हमने वृहद पैमाने पर प्रभावित करने वाले गुरुत्वाकर्षण बल की चर्चा की। क्या प्रकृति में पाया जाने वाला और भी कोई बल है? क्या पृथ्वी पर अब और कोई भाग नहीं है जिसे हमें समझना है? आइए अणु के और भीतर चलें, परमाणु के और भीतर, एकदम नाभिक के अन्दर पहुंच जाते हैं।

नाभिक के अन्दर प्रोटॉन और न्यूट्रॉन, दो जाति के कण पाए जाते हैं। यहां पहुंचकर हमे एक अजीबोगरीब बात देखने को मिलती है – यहां दो प्रोटॉन एक साथ रह रहे हैं। अभी तक तो हमने यही पढ़ा था कि दो समान आवेश के बीच विकर्षण होता है, और दूरी कम हो तो विकर्षण और भी बढ़ेगा। तो फिर इतनी कम दूरी पर ये दो प्रोटॉन एक साथ कैसे रहते हैं? एक परमाणु में चले जाओ तो दूरी 10^{-10} मीटर है और नाभिक में पहुंच जाओ तो दूरियां और कम हो जाती हैं – सिर्फ 10^{-14} मीटर। इतनी कम दूरी पर दो सम आवेश पास-पास कैसे? दूर भाग नहीं जाएंगे वे? ज़रूर कोई चीज़ पकड़े रखती होगी इन्हें? एक और बल है जिसकी कारस्तानी है यह, और यह बहुत ही तगड़ा बल है।

क्या होती है रासायनिक ऊर्जा

क्या अब हम रासायनिक ऊर्जा यानी कि रासायनिक क्रियाओं के दौरान पैदा होने वाली या अवशोषित ऊर्जा को भी परमाणुओं के बीच लगने वाले बल के संदर्भ में देख सकते हैं?

यदि दो परमाणुओं के बीच आकर्षण का बल है और यदि ऐसी स्थिति में एक परमाणु को दूसरे परमाणु से दूर करना हो तो क्या करना होगा? स्वाभाविक है कि परमाणु को अगर हम दूर ले जाना चाहें तो ऊर्जा देनी पड़ेगी। यह ऊर्जा उन्हीं परमाणुओं में स्थितिज ऊर्जा के रूप में संग्रहित हो जाएगी।

इसका अर्थ यही हुआ न कि अगर किसी रासायनिक क्रिया के दौरान नए पदार्थों में परमाणुओं में दूरी बढ़ जाती है तो स्वाभाविक है कि उस रासायनिक प्रक्रिया में हमें ऊर्जा देनी पड़ेगी।

और मानो रासायनिक क्रिया ऐसी थी कि बनने वाले नए पदार्थों में संरचना इस तरह बदली कि परमाणु पास-पास आ गए तो उनकी स्थितिज ऊर्जा कम हो जाएगी। यानी कि उस रासायनिक क्रिया में हमें ऊर्जा प्राप्त होगी, स्थितिज ऊर्जा पुनः गतिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाएगी।

विभिन्न पदार्थ अणुओं और परमाणुओं से बने हुए होते हैं। किसी भी रासायनिक क्रिया से उनकी संरचना में परिवर्तन होता है। अगर कोई रासायनिक क्रिया ऐसी है कि उसमें परमाणुओं के बीच दूरी बढ़ जाती है यानी स्थितिज ऊर्जा बढ़ती है, तो ऐसी रासायनिक क्रिया में हमें ऊष्मा देनी पड़ती है। अगर रासायनिक क्रिया ऐसी है कि उसमें परमाणु पास-पास आ रहे हैं तो स्पष्ट है कि उस क्रिया में ऊर्जा बाहर निकलेगी।

अर्थात किसी रासायनिक क्रिया में भी पदार्थ की स्थितिज ऊर्जा या गतिज ऊर्जा में ही परिवर्तन हो रहे हैं, यह और बात है कि आप इसे रासायनिक ऊर्जा का नाम दे दें।

कूलम्ब बल के सामने हमने आपसे कहा था कि गुरुत्वाकर्षण बल कहीं नहीं लगता। परन्तु अब जिस बल की बात करने जा रहे हैं उसके सामने कूलम्ब का बल भी कुछ नहीं लगता। इस बल को *स्ट्रॉंग बल* कहते हैं।

हमने इस लेख की शुरुआत में देखा था कि आवेशों के बीच कूलम्ब का

बल होता है, मगर जब अणुओं के बीच लग रहे बल की बात होती है तो सीधे-सीधे कूलम्ब का बल नहीं काम करता परन्तु डायपोल यानी युग्मध्रुव के कारण आण्विक बल काम करता है। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि परमाणुओं के बाहर छनके आने वाला शेष बल काम कर रहा है।

दो प्रोटॉन और दो न्यूट्रॉन के बीच में जो बल लगता है वह भी ऐसा ही बल है। प्रोटॉन और न्यूट्रॉन भी कुछ कणों से मिलकर बने हैं जिन्हें क्वार्क कहते हैं। इन क्वार्क कणों के बीच ही वह बल लगता है जिसे हम *स्ट्रोंग बल* कहते हैं। यह बल प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन के बीच लगने वाले आवेश के बल से काफी अधिक है, इसीलिए उसका नाम *स्ट्रोंग बल* रखा गया है। इसकी वजह से ही प्रोटॉन और प्रोटॉन एक दूसरे को खींचते हैं, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन एक दूसरे को खींचते हैं, न्यूट्रॉन और न्यूट्रॉन एक दूसरे को खींचते हैं। ये सब जिन कणों से बने हैं उन के बीच लगने वाला बल है यह, यानी क्वार्क के बीच लगने वाला बल। इस बल की एक और खास बात है कि दूरी बढ़ने पर यह कम नहीं होता, बल्कि जितनी दूरी बढ़े उतना बल बढ़ता ही जाता है! दो आवेशों के बीच दूरी बढ़ती है तो कूलम्ब का बल घटता है मगर यहां तो उसका एकदम उल्टा है।

अब तक तो हमने यही देखा था कि पिन्डों के बीच में दूरी बढ़े तो बल घटता है – चाहे वह गुरुत्वाकर्षण बल हो या कूलम्ब का बल। यह तो बिलकुल उल्टी बात हुई न, जितना दूर जाओ आकर्षण का बल उतना बढ़ता जाए। पक्का नियम मालूम नहीं है क्योंकि क्वार्क को देखना मुश्किल है। ज़रा सोचिए ऐसा क्यों? अगर क्वार्क को देखना है तो प्रोटॉन, न्यूट्रॉन या इलेक्ट्रॉन में से क्वार्क को खींचकर बाहर लेकर आना होगा। इलेक्ट्रॉन को तो बाहर निकालकर देख सकते हैं क्योंकि नाभिक से जितना दूर ले जाएंगे आकर्षण कम होता जाता है। मगर यहां तो क्वार्क को खींचकर जितना दूर लेकर जाएंगे, उसको और दूर लेकर जाने के लिए और भी ज़्यादा ताकत लगानी पड़ेगी।

इसीलिए फ्री या स्वतंत्र क्वार्क कभी देखने में नहीं आते।

नाभिकीय बल

परमाणु के नाभिक के अंदर तो क्वार्क एक दूसरे को संतुलित किए हुए हैं, लेकिन जिस तरह परमाणुओं में से कुछ कूलम्ब का बल बाहर आ गया और आणविक बल बना, वैसे यहां भी जो बल बाहर आ जाता है उसे न्यूक्लियर बल कहते हैं। जैसा आणविक बल है बिल्कुल वैसा ही है

यह नाभिकीय बल भी, यानी कि बहुत दूर चले जाओ तो बल नहीं है, पास आओ तो आकर्षण का बल है, एकदम पास आ जाओ तो प्रतिकर्षण का बल है।

आणविक बल 10^{-9} मीटर की दूरी पर काम करते हैं, यानी उसकी रेंज 10^{-7} सेमी होती है। परन्तु न्यूक्लियर बल की रेंज और भी कम होती है। यह 10^{-13} सेमी की दूरी पर काम करते हैं। इस से ज़्यादा दूर चले जाओ तो बल खत्म। परन्तु यह नाभिकीय बल है बड़ा ताकतवर बल। इसलिए हम एक प्रोटॉन को दूसरे प्रोटॉन से दूर नहीं ले जा सकते, एक न्यूट्रॉन को दूर नहीं ले जा सकते क्योंकि आकर्षण का बल है। अगर दूर ले जाना हो तो बहुत ही ज़्यादा कार्य करना पड़ेगा। इसलिए अगर एक प्रोटॉन और न्यूट्रॉन को हम अलग कर दें तो उसमें बहुत सारी स्थितिज ऊर्जा आ जाती है, और वह स्थितिज ऊर्जा इतनी अधिक होती है कि उसके कारण उनके द्रव्यमान (संहति या mass) के माप में अन्तर आ जाता है।

कोई भी वस्तु की आन्तरिक ऊर्जा उसके द्रव्यमान के माप में शामिल होती है यानी अगर आन्तरिक ऊर्जा बढ़ा दो तो उसका द्रव्यमान भी बढ़ जाता है।

अगर गुरुत्वाकर्षण बल के विपरीत वस्तु को ऊपर की ओर ले जाएं तो उसकी स्थितिज ऊर्जा बढ़ती है, तो सिद्धांततः उसका द्रव्यमान भी बढ़ा। यह बदलाव दिखता नहीं है क्योंकि उसमें वास्तविक द्रव्यमान में परिवर्तन बहुत ही कम आया है। अगर आप उसको E ऊर्जा प्रदान करेंगे तो उसके द्रव्यमान में बढ़ोतरी E/c^2 होगी। यहां पर c प्रकाश का वेग है, 3×10^8 मीटर/सेकंड। हम गुरुत्वाकर्षण के विपरीत वस्तु को ले जाने के लिए कितनी भी ऊर्जा दें मगर द्रव्यमान में परिवर्तन 0.000...... ग्राम ही आएगा। यह बदलाव इतना कम है कि हम यह कभी नहीं सोचते कि वस्तु को ऊपर उठाने से उसका द्रव्यमान बढ़ गया है।

लेकिन जब हम प्रोटॉन और न्यूट्रॉन की बात करेंगे तो उसमें इतनी अधिक ऊर्जा देनी पड़ेगी कि वहां द्रव्यमान में अन्तर साफ दिखाई पड़ता है, उसके परिमाण यानी मात्रा में फर्क दिखाई देता है।

मैंने आपसे रासायनिक ऊर्जा के बारे में कहा था कि अणु की संरचना बदल दी, परमाणुओं के बीच की दूरी बदल दी तो उसकी आंतरिक ऊर्जा बदलेगी। वैसे ही अगर नाभिक की संरचना बदल दो – अगर नए नाभिक के अन्दर प्रोटॉन और न्यूट्रॉन करीब करीब हैं तो स्थितिज ऊर्जा कम होगी और वह ऊर्जा बाहर आएगी।

यही होता है एटम व हाइड्रोजन बम में। जब यूरेनियम का विघटन होता है या हाइड्रोजन का संलयन होता है तो दोनों में यही क्रिया होती है – दोनों में दूर वाले प्रोटॉन और न्यूट्रॉन पास-पास आते हैं और हमें बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा उपलब्ध होती है। नाभिकीय क्रिया में काम कर रहे बल बहुत शक्तिशाली होने से ऐसी क्रिया से हमें बहुत ज़्यादा ऊर्जा प्राप्त होती है। ये नाभिक के अंदर मौजूद स्ट्रोंग फोर्स की वजह से ही संभव होता है।

इस प्रकार से हम नाभिक तक जाकर प्रकृति को समझ सकते हैं। परन्तु इसे समझने में हमें किस बात की आवश्यकता पड़ी? बलों की क्योंकि बिना बलों के यह समझना मुश्किल है कि ऊर्जा कहां-कहां कैसे जाती है।

द्रव्यमान और ऊर्जा का रिश्ता

अब मैं आपको एक और बात बताता हूं कि द्रव्यमान और ऊर्जा जो है वे अलग-अलग चीज़ें नहीं हैं। ऊर्जा को आपने विद्युत के रूप में देखा, ऊष्मा के रूप में देखा, या गति के रूप में देखा, या स्थिति के रूप में देखा। ऊर्जा का एक और रूप होता है जिसको हम रेडिएशन या विकिरण कहते हैं, जिसे हम तरंग के रूप में देखते हैं। विद्युत चुम्बकीय तरंग के रूप में और कभी-कभी द्रव्यमान या संहति के रूप में।

जैसे एक कण को ऊर्जा प्रदान करना शुरू किया तो क्या होगा? ऊर्जा दे रहा हूं, मान लो घर्षण नहीं है, विपरीत दिशा से लगने वाला बल नहीं है। तो मैं जो भी ऊर्जा दे रहा हूं वो उस कण की गति को बढ़ाते चली जाएगी, और उसका वेग बढ़ता चला जाएगा। अगर उस कण को ऊर्जा देता ही चला जाऊं तो वेग लगातार बढ़ता चला जाएगा। बढते बढते कहां तक जाएगा यह वेग? क्या अनन्त तक? नहीं, ऐसा नहीं होगा। प्रकृति का एक नियम है कि कोई भी वस्तु प्रकाश के वेग से अधिक गति नहीं कर सकती। तो फिर ऊर्जा का क्या होगा? अगर मैं ऊर्जा देते चला जा रहा हूं तो जब उस कण का वेग प्रकाश के वेग के करीब पहुंचता है तो फिर ऊर्जा द्रव्यमान में परिवर्तित होना शुरू हो जाती है।

अगर स्थिर यानी रुकी हुई अवस्था में वस्तु का द्रव्यमान कुछ है यानी उसका द्रव्यमान शून्य नहीं है तो मैं इसे किसी भी हालत में प्रकाश का वेग प्रदान नहीं कर सकता क्योंकि उसके लिए अनन्त ऊर्जा की आवश्यकता लगेगी। उसका सूत्र होता है

$$m = \frac{m_0}{\sqrt{1 - \vartheta^2/c^2}}$$

अगर m_0 का कुछ भी मान है

और यदि मुझे v बराबर c करना है तो द्रव्यमान अनन्त हो जाएगा। यानी ऐसी वस्तु जिसका कि स्थिर अवस्था में कोई द्रव्यमान है उसे मैं कभी भी प्रकाश के वेग की गति प्रदान नहीं कर सकता क्योंकि इसके लिए अनन्त ऊर्जा देनी पड़ेगी।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि कोई भी वस्तु प्रकाश के वेग से नहीं चलती, ऐसा भी कुछ है जो प्रकाश के वेग से चलता है, वे हैं तरंगें। वास्तव में जिसे हम प्रकाश की तरंग कहते हैं, वह प्रकाश के वेग से चलती है। उनका स्थिर अवस्था में कोई द्रव्यमान नहीं होता। वे कभी स्थिर होती ही नहीं हैं – प्रकाश जो है वह स्थिर नहीं होता।

परन्तु कभी-कभी प्रकाश की एक तरंग किसी कारणवश द्रव्यमान में बदल जाती है – यह विश्व की अद्भुत घटना है। इसे pair production कहते हैं – अचानक एक साथ दो कण बन जाते हैं, एक धन कण और एक ऋण कण। एक पॉज़िट्रॉन, एक इलेक्ट्रॉन – दोनों का कुल आवेश शून्य। कुल मिलाकर आवेश नहीं बना, लेकिन द्रव्यमान बन गया।* पॉज़िट्रॉन का जितना द्रव्यमान है इलेक्ट्रॉन का भी उतना ही द्रव्यमान है।

इसके विपरीत यह देखने को आया है कि यदि आप इन दोनों कणों को मिला दो तो वे एकदम गायब हो जाते हैं और हमें प्रकाश की तरंगें प्राप्त होती हैं। इसे 'वेव एनहीलेशन' कहते हैं यानी द्रव्यमान का पूर्ण रूप से ऊर्जा में परिवर्तित हो जाना। अर्थात द्रव्यमान भी ऊर्जा का ही रूप है – एक ही ऊर्जा, पूरी प्रकृति में, अनेक रूपों में। हमें कहना चाहिए कि ऊर्जा ने पूरी प्रकृति में अपने आप को परिवर्तित कर लिया है। और इसके पीछे कारण क्या है? हमने वे कारण भी देखे जिनकी वजह से ऊर्जा इतने रूपों में परिवर्तित होती है। तीन किस्म के बल जिनकी हमने अब तक चर्चा की – गुरुत्वाकर्षण बल, कूलम्ब का बल और स्ट्रोंग फोर्स; वे ही हैं जो ऊर्जा को विभिन्न रूपों में प्रकट करते रहते हैं।

एक और बल है जिसकी मैं यहां चर्चा नहीं करूंगा, बस उल्लेख भर कर देता हूं। एक चौथा बल भी है जिसे *वीक फोर्स* कहते हैं। उसकी वजह से जो घटनाएं होती हैं वे दैनन्दिन जीवन में देखने को नहीं आती। इस तरह कुल मिलाकर चार तरह के बल हैं।

* यहां भी उत्पन्न द्रव्यमान तरंग की ऊर्जा के अनुपात में ही होगा। समीकरण से अगर आप ऊर्जा निकालें तो आपको ऊर्जा संरक्षित मिलेगी। नष्ट नहीं हुई यह, केवल तरंग की ऊर्जा द्रव्यमान में परिवर्तित हो गई है। $E = mc^2$

बलों का एकीकरण

ऐसा लगता है कि वास्तव में कूलम्ब का बल, स्ट्रोंग बल और वीक बल ये तीनों अलग-अलग परिस्थितियों में एक ही बल के अलग-अलग रूप हैं। आइनस्टाइन ज़िन्दगी भर यह प्रमाणित करने की कोशिश करता रहा कि प्रकृति के ये जो चार बल हैं वास्तव में वे अलग-अलग नहीं हैं, एक ही बल अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग रूप में प्रकट हो रहा है। इसे ही 'यूनिफिकेशन ऑफ ऑल फोर्सिस' यानी बलों का एकीकरण कहते हैं।

फिलहाल वैज्ञानिक तीन बलों का एकीकरण तो कर पाए हैं, चौथे को भी इसमें जोड़ने के अथक प्रयास जारी हैं। वे इसी बात को समझने की कोशिश में हैं कि केवल एक ही बल है जो अलग अलग रूप में प्रकट हो रहा है। और इसी के कारण ऊर्जा जो वास्तव में एक ही है भिन्न रूपों में प्रकट हो रही है।

एस. बी. वेलणकर: होलकर साइंस कॉलेज, इंदौर में भौतिक शास्त्र पढ़ाते हैं।

तीन लेखों की यह शृंखला एस. बी. वेलणकर द्वारा दिए गए एक व्याख्यान का हिस्सा है। यह व्याख्यान उन्होंने होशंगाबाद में 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' के स्रोत शिक्षकों की एक कार्यशाला में दिया था।

कब खत्म हो रही है आपकी सदस्यता

संदर्भ के लिफाफे पर लगी पते की स्लिप पर गौर करें। इसमें पते के अलावा एक और जानकारी होती है। जो इस तरह लिखी होती है:

24th Issue (last Issue)

इसका मतलब है कि आपकी सदस्यता 24वें अंक में समाप्त होने वाली है। इसलिए 23वां अंक पाते ही आप नया सदस्यता शुल्क भेज दें। ताकि आगे के अंक आपको लगातार मिलते रहें।

जादुई तालाब – एक और हल

इस बार संदर्भ बहुत देर से आई। सोचा था कि ऐसा एक पत्र लिखा जाए जिसमें यह शिकायत हो किंतु संदर्भ का यह 'संयुक्तांक' ऐसा है जिसने मेरी शिकायत को दूर कर दिया। संदर्भ में एक खराबी भी है कि जब भी संदर्भ आती है मेरे उस समय-विशेष के कार्यों को अव्यवस्थित कर देती है, क्योंकि जब तक इसे अच्छी तरह से देख न लूं, कहीं और मन ही नहीं लगता। इस बार की संदर्भ मुझे ज़्यादा प्रिय लगी क्योंकि इसमें गणित का समावेश है। और वह गणित भी रोचक तरीके से लिखा और दर्शाया गया है। विजय शंकर वर्मा के लेख को पढ़कर आगे बढ़ाने की इच्छा हुई। मैं जब भी कोई लेख या कहानी पढ़ता हूं तो उसमें दिए गए निर्देशों के अनुसार पढ़ने की कोशिश करता हूं क्योंकि वैसा करने में कुछ ज़्यादा ही मज़ा आता है। जैसे वर्माजी के लेख में उन्होंने पहेली के तुरंत बाद कहा कि लेख को वहीं छोड़ कर आगे पढ़ने से पहले पहेली को हल करने की कोशिश करें, तो मैं शुरू हो गया। पहले मन में करने की कोशिश की, पर जल्द ही कागज़ पेन उठाना पड़ा। मैंने इसे जिस विधि से हल किया वह वर्माजी के तरीके से अलग था। बस अंतर सिर्फ इतना है कि लेखक ने दो 'चरों' (अज्ञात राशि) का इस्तेमाल किया है जबकि मैंने सिर्फ एक 'चर' लिया।

पहेली सामने रखी और ध्यान दिया कि इसका अंत तो निश्चित है इसलिए मैंने इसे अंत से शुरू किया।

माना कि सबसे अंत में पुजारी ने X फूल चढ़ाए। और अब उसके पास कुछ भी नहीं बचा। अत: आखिरी बार तालाब में फूल धोने से पहले या तीसरे मंदिर में फूल चढ़ाने के बाद उसके पास X/2 फूल बचे होंगे।

क्योंकि सभी मंदिरों में चढ़ाए जाने वाले फूलों की संख्या समान है इसलिए तीसरे मंदिर में भी उसने X फूल चढ़ाए होंगे। यानी तीसरे मंदिर में चढ़ाने से पहले उसके पास

$X/2 + X = 3X/2$ फूल होंगे।

इसी प्रकार

दूसरे मंदिर में चढ़ाने के बाद और तालाब में धोने के पहले

$3X/2 \times 1/2 = 3X/4$ फूल थे

और दूसरे मंदिर में चढ़ाने से तुरंत पहले

$3X/4 + X = 7X/4$ फूल थे

इसी प्रकार दूसरे मंदिर से पहले, तालाब में धोने के पहले

$7X/4 \times 1/2 = 7X/8$ फूल थे

और पहले मंदिर में चढ़ाने के तुरन्त पहले

$7X/8 + X = 15X/8$ . . . . . (1)

और क्योंकि फूल तोड़ने के तुरंत बाद उन्हें तालाब में डुबाया गया इसलिए तालाब में पहली बार धोने से पहले

$15X/8 \times 1/2 = 15X/16$ फूल थे . . . . (2)

अब हमारे पास समीकरण (2) में $15X/16$ फूल थे

जिसमें X चढ़ाए गए फूलों की संख्या है। चूंकि संख्या पूर्णांक होनी चाहिए अतः X का मान 16 से विभाज्य होना चाहिए।

इसलिए $X = 16, 32, 48, 64 \ldots\ldots 16n$

तब समीकरण (2) से हम आसानी से पता कर सकते हैं कि उसने कितने फूल तोड़े होंगे।

यदि $X = 16$ तो

$15X/16 = 15 \times 16/16 = 15$ फूल तोड़े

इसी प्रकार $X = 32, 48, 64 \ldots\ldots 16n$

के लिए तोड़े फूल $= 30, 45, 60 \ldots\ldots 15n$

तो इस प्रकार इसके अनंत हल हो सकते हैं। यदि कोई सीमा बताई जाए तो उस आधार पर भी हल देखा जा सकता है।

ज़रा (1) नंबर के समीकरण को देखिए। जब मैं पहेली पढ़ रहा था तो शुरू में कुछ उलझ गया था। मैंने यह समझा कि पुजारी ने फूल तोड़ने के तुरंत बाद तालाब में फूलों को नहीं धोया। तब इस पहेली का उत्तर पहले समीकरण पर ही आ गया कि पुजारी द्वारा तोड़े गये फूलों की संख्या 15X/8 होगी और इसमें से पुजारी ने X फूल चढ़ाए।

मतलब कि यदि पूर्णांक देखें तो

X = 8, 16, 24, 32 . . . . फूल चढ़ाए

15X/8 = 15, 30, 45, 60 . . . . . फूल तोड़े

यह विधि मुझे हमेशा से सरल लगी है इसलिए शायद मैंने इसे अपनाया। संदर्भ के अन्य पाठक कोई और विधि जानते हों तो संदर्भ के माध्यम से मुझ तक पहुंचाएं।

प्रमोद मैथिल
इटारसी, ज़िला होशंगाबाद

भूल: संदर्भ के मार्च से जून 1998 अंक में जादुई तालाव की पहेली शीर्षक से विजय शंकर वर्मा द्वारा लिखित लेख के अंतिम पृष्ठ (पेज नंबर 114) पर तमिलनाडु की एक पहेली का ज़िक्र किया गया था। यह पहेली लेखक ने एक किताब 'न्यूमरेसी काउट्स से ली थी। इस किताब को अनीता रामपाल, आर. रामानुजन और एल. एस. सरस्वती ने लिखा है और नेशनल रिसोर्स सेन्टर, लाल बहादुर प्रशासन अकादमी, मसूरी ने प्रकाशित किया है।
हम लेख के साथ इस किताब का उल्लेख करना भूल गए थे। इसके लिए हमें खेद हैं।

संपादन मंडल

बच्चों का मौलिक लेखन

कमलेश चंद्र जोशी

स्कूल जैसी संस्थाएं बच्चों के मौलिक लेखन को बढ़ावा देने की बजाए एक खास किस्म की शैली प्रदान करती हैं जो बच्चों की अपनी नहीं होती। बच्चों को मौलिक अभिव्यक्ति का मौका ही न दिया जाए तो वे कैसे सीखेंगे भाषा? इतना ही नहीं, अगर बच्चों को उनके मन मुताबिक लिखने, बोलने की स्वतंत्रता दें तो हमें भी उन्हें समझने में मदद मिलेगी।

बच्चों के साथ काम करते हुए मुझे उनकी भाषा को पास से देखने-समझने का काफी मौका मिला है। हमारे बाल केंद्र पर आने वाले बच्चों को स्वतंत्र रूप से लिखने, चित्र बनाने, किताबें पढ़ने जैसे मौके खूब दिए जाते हैं। उनके आसपास के ढेर सारे विषयों (जैसे स्कूल, सूरज, बगीचा, पुल, पतंग, बाज़ार आदि) और बच्चों द्वारा स्वयं पहले बनाए गए स्वतंत्र चित्रों के आधार पर लिखने के लिए भी उनसे कहा जाता है। बच्चों की इन स्वतंत्र अभिव्यक्तियों को पढ़ने पर बच्चों की भाषा व उनकी रचनाशीलता के बारे में गहराई से सोचने-विचारने का अवसर मिला।

जिन बच्चों के मैं उदाहरण दे रहा हूं इन बच्चों की औसत उम्र 8-10 वर्ष है और ये बस्ती की प्राथमिक शाला की तीसरी, चौथी, पांचवीं कक्षाओं में पढ़ते हैं। उनके लेखन में हमने मात्राओं और व्याकरण पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। हमारा ज़ोर इस बात पर रहा है कि वे स्वतंत्र रूप से लिखना सीखें। यहां पर उनके वाक्यों को ज्यों-का-त्यों रखने की कोशिश

की गई है। हां, हमने मात्राओं को ज़रूर सुधारा है। तो आइए देखें कि बच्चों की यह स्वतंत्र अभिव्यक्ति क्या कहती है।

सूरज जल रहा है

एक चित्र को देखकर उसके बारे में आठ वर्षीय मीना लिखती है – "सूरज जल रहा है। धूप आ रही है। औरत कपड़े सुखाने आ रही है। बारिश आ रही है। उसके सारे कपड़े भीग गए हैं।" यहां मीना का पहला वाक्य है – "सूरज जल रहा है।" इस वाक्य को बच्चों की शब्दावली के अनुसार देखें तो यह वाक्य बिल्कुल ठीक है क्योंकि आठ वर्षीय मीना को अभी 'चमकने' व 'जलने' के बीच का बारीक अंतर नहीं मालूम। हम यह भी कह सकते हैं कि उसका शब्द-भंडार अभी इतना विकसित नहीं हो पाया है।

इसके अलावा मीना के लेखन से कुछ बातें और स्पष्ट होती हैं। हम लोगों की समझ के अनुसार उसके वाक्यों में अभी कोई तारतम्य नहीं है। (हालांकि उसकी उम्र व भाषा की समझ के अनुसार वह बिलकुल ठीक है) अगर हम इन वाक्यों को व्यवस्थित करें तो शायद हम लिखेंगे – बारिश आने से सारे कपड़े भीग गए। अब सूरज चमक रहा है। धूप आ रही है। औरत कपड़े सुखा रही है।

लेकिन यहां हम अपनी समझ के अनुसार इन वाक्यों को पूर्ण रूप से सही संदर्भ में रखने की कोशिश कर

रहे हैं जिससे हमारा आशय अन्य लोग समझ सकें। लेकिन मीना ने क्या किया? उसने चित्र की चीज़ों को अलग-अलग करके देखा है। उसके आधार पर उसने एक-एक वाक्य लिखा। लेकिन वह अपने सारे वाक्यों को हम 'बुजुर्गों' के मानसिक स्तर के अनुरूप एक क्रमबद्ध, पूर्ण संदर्भ में नहीं रख पाई (उसके मानसिक स्तर के अनुसार ये अलग-अलग वाक्य एक संदर्भ बनाते हैं)। उसके इन वाक्यों को हम बड़ों को समझने में थोड़ी दिक्कत होती है क्योंकि हम मीना के स्तर पर नहीं उतर सकते। लेकिन मीना जानती है कि वह क्या लिखना या कहना चाह रही है। यहां मैं यह अनुरोध करना चाहता हूं कि हम बच्चों के लेखन को उनके मानसिक स्तर पर जाकर समझने की कोशिश करें।

मीना ने सूरज के लिए 'चमकना' की बजाए 'जलना' शब्द का क्यों इस्तेमाल किया इसकी एक और व्याख्या संभव है। हो सकता है कि चमकना शब्द मीना जानती हो हालांकि किसी के दिमाग में नहीं झांका जा सकता। फिर भी मैं सोचता हूं कि कहीं मीना यह तो नहीं सोचती है कि चमकने से भला कोई चीज़ कैसे सूख सकती है? जैसे बिजली चमकती है, जुगनू चमकते हैं, तारे चमकते हैं। क्या ये चमकने वाली चीज़ें अन्य चीज़ों को सुखाती हैं? शायद इसलिए उसने 'चमकना' का प्रयोग न करके 'जलना' शब्द का प्रयोग किया हो।

शब्दों के इस्तेमाल से जुड़ी एक बात और संभव है जो लिखते समय अक्सर हमें भी महसूस होती है – कभी-कभी हमें उस मौके पर उपयुक्त शब्द नहीं मिलते इसलिए यह संभावना भी है कि मीना 'चमकना' शब्द से परिचित तो है लेकिन लिखते समय उसे यह शब्द सूझा न हो।

अखबार के मायने

अब उक्त लेखन को ज़रा हम अपने प्राथमिक विद्यालयों के संदर्भ में देखें। हमारे विद्यालयों में औपचारिक भाषा पर इतना ज़्यादा बल दिया जाता है कि बच्चों की मौलिक भाषा का विकास नहीं हो पाता। यही बात हमें बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में भी दिखती है। जबकि होना यह चाहिए कि बच्चों को भाषा सिखाने के लिए उन्हें स्वतंत्र रूप से कुछ करने का मौका दिया जाना चाहिए। उन्हें औपचारिकता में नहीं बांधना चाहिए। बच्चों को पढ़ने-लिखने की जितनी सार्थक सामग्री मिलेगी वे खुद-ब-खुद लिखने-पढ़ने में रुचि लेने लगेंगे। उनकी भाषा स्वतः विकसित होती जाएगी। उन्हें स्वयं ही मात्राओं और व्याकरण का ज्ञान होता जाएगा। उन्हें रटने की ज़रूरत भी

नहीं पड़ेगी।

इसी तरह 'अखबार' के बारे में आठ वर्ष की पार्वती लिखती है – "अखबार से नेताओं को बड़ी आसानी होती है। जहां कहीं खबरें पहुंचानी होती हैं तो वे अखबार के द्वारा पहुंचा देते हैं जैसे कि हवाई जहाज़ में आग लग गई। टी. वी. में आज क्या आएगा?"

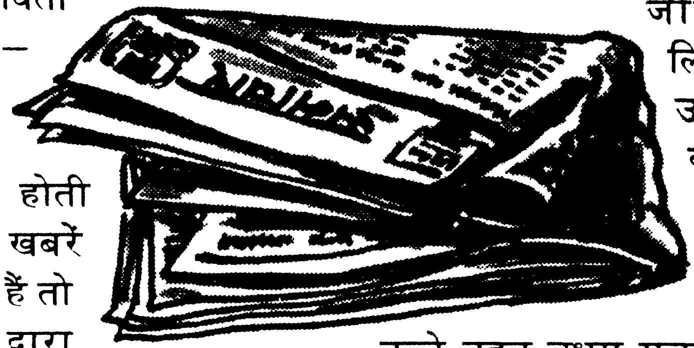

यहां पार्वती ने भी अपनी समझ के अनुसार बिल्कुल सही लिखा है। नेताओं का ज़िक्र उसने इसलिए किया क्योंकि आमतौर पर सारे अखबारों में राजनैतिक खबरें व नेताओं के फोटो ज़्यादा होते हैं। इन्हीं अखबारों को वह अक्सर देखती रहती है।

यदि हमारी मंशा बच्चों से यह है कि 'अखबार' के बारे में वे किताबी निबंध लिखें तो साफ है कि हमें सफलता हासिल नहीं होगी। बच्चों से निबंधनुमा शैली की अपेक्षा करने के बजाए यह देखना चाहिए कि बच्चे अपनी सोच-समझ के अनुसार कितना लिख पा रहे हैं? उन्हें इसके लिए अधिक-से-अधिक प्रेरित करना चाहिए। कुल मिलाकर सार यह कि बच्चे यहां पर रटी हुई बात नहीं अपने मन की बात लिख रहे हैं।

मेरा स्कूल

'स्कूल' के बारे में बच्चों ने अपने जीवन्त अनुभव लिखे हैं। क्योंकि उनका इससे रोज़ का वास्ता होता है। नौ साल का विनोद लिखता है – "स्कूल में बच्चे बहुत उधम मचाते हैं। स्कूल में बच्चे पढ़ते नहीं हैं। बच्चे स्कूल में खेलते रहते हैं। स्कूल में दीदी नहीं पढ़ाती हैं। बच्चे स्कूल में इधर-उधर घूमते रहते हैं। स्कूल में बच्चे एक-दूसरे को मारते रहते हैं। स्कूल में बच्चे दीदी का कहना नहीं मानते।"

विनोद की उक्त स्वाभाविक अभिव्यक्ति की प्राथमिक स्कूलों में लिखवाए जाने वाले निबंध से तुलना करें तो हम पाते हैं कि जो स्कूल में लिखाया जाता है वह वास्तविकता से कोसों दूर होता है। जबकि यहां पर विनोद का लेखन वास्तविकता का वर्णन करने का प्रयास करता है। लेकिन ऐसे लेखन का हमारे विद्यालयों में कोई महत्व नहीं है। अगर विनोद इन्हीं बातों को स्कूल की कॉपी में लिख दे तो इसे तुरंत काट दिया जाएगा।

इसके अलावा हमारे विद्यालयों में जो स्कूल में निबंध लिखाया जाता है उसकी भाषा बेहद कृत्रिम होती है।

उसमें कोई रोचकता नहीं होती। केवल साधारण वाक्य होते हैं। उसमें विद्यालय का कोई जीवंत स्पन्दन नहीं मिलता। वहां लिखवाया जाता है – "मैं कक्षा .... में पढ़ता हूं। मेरे विद्यालय का नाम .... है। इसमें .... कमरे हैं। हमारे विद्यालय में........ अध्यापक हैं। हमारे विद्यालय में एक हरा-भरा खेल का मैदान है। वहां पर हम खेलते हैं। हमारी कक्षा अध्यापिका का नाम........ है। वे बहुत अच्छी हैं। वे हमें अच्छी तरह पढ़ाती हैं, आदि।" इसी तरह के निबंध हमारी अंग्रेज़ी-हिन्दी की भाषा और व्याकरण की पुस्तकों में काफी तादाद में देखने को मिलते हैं।

यह भाषा बच्चों की भाषा से कतई मेल नहीं खाती और परिक्षाओं के लिए बच्चों को इस निबंध को ज़बरदस्ती 'रटना' पड़ता है। क्योंकि निबंध के लिए अंक भी सबसे अधिक निर्धारित होते हैं इसलिए निबंध रटना बच्चों के लिए बेहद ज़रूरी माना जाता है। अक्सर घर में बच्चों के पालक भी उन्हें निबंध रटवाते नज़र आते हैं।

मौलिक लेखन को बढ़ावा

इसी तरह बच्चों ने उनके द्वारा ही बनाए गए तमाम चित्रों तथा अपने आसपास के विषयों पर बहुत-सी बातें लिखी हैं। उन्हें पढ़कर स्पष्ट समझ बनती है कि बच्चों को स्वतंत्र रूप से लिखने के मौके देकर हम उनकी स्वाभाविक सोच व कल्पनाशीलता को बढ़ावा दे रहे हैं। इससे बच्चों की लिखित भाषा का विकास भी हो रहा है।

ऐसी लेखन गतिविधियां करवाते समय हमें बच्चों के स्वतंत्र लेखन को कुछ वाक्यों/पैराग्राफ/पृष्ठ की सीमा में नहीं बांधना चाहिए। यह इसलिए कि प्रत्येक बच्चे का अपना भाषा-ज्ञान होता है। उनकी अपनी वाक्य बनाने की क्षमता होती है। यूं तो प्राथमिक विद्यालयों के सभी बच्चे अभी पूरी तरह लिखना ही नहीं जानते। सीमा निर्धारण के कारण बच्चे अपने लेखन को ज़बरदस्ती खींचते हैं क्योंकि उन्हें कॉपी में उतनी जगह तो भरनी ही है। इसे पूरा करने में वे अपनी मौलिकता खो देते हैं। वहां पर उनके वाक्यों में दोहराव और कृत्रिमता झलकने लगती है।

बच्चों के लेखन में यह भी देखने को मिलता है कि जो बच्चे अभी पूरी तरह नहीं लिख पाते वे अक्सर मात्राओं की गलती करते हैं। इस कारण वे लिखना भी नहीं चाहते क्योंकि उनके मन में शंका रहती है कि जो मैं लिख रहा हूं, क्या वह सही होगा? उनके मन में सही-गलत की भावना बहुत रहती है। यह उनको स्कूल तथा आसपास के माहौल से प्राप्त होती है। इसलिए हमारे लिए ज़रूरी है कि बच्चों

को लिखने के लिए प्रेरित करने के लिए इस तरह का माहौल बनाया जाए कि वे बिना मात्रा-व्याकरण की चिंता किए स्वतंत्र रूप से लिखें।

काश! मैं भी पतंग उड़ा पाती

हम लोगों ने बच्चों के द्वारा खुद के लिखे पर जब उनसे समूह में बैठकर बात की तो कई सारे प्रश्न उभरकर आए। जैसे बस्ती में पीपल के पेड़ के नीचे क्या-क्या होता है? इस पर उन्होंने ढेर सारी बातें लिखीं और उस पर बातचीत के दौरान उन्होंने कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए जैसे कि दस साल की बबीता ने कहा – "लोग पेड़ के नीचे लड़ाई करते हैं और पेड़ की पूजा भी करते हैं।" इसी तरह नौ वर्ष के अशोक ने बताया – "आदमी लोग पेड़ के नीचे जुआ खेलते हैं। लेकिन हमें डिबरी खेलने के लिए मना करते हैं।" इन प्रश्नों का उत्तर देने में हम भी लाचार रहे। हां, बच्चों के तर्क थे दमदार। हमें इसी बात की खुशी थी कि बच्चे भी वज़नदार सवाल पेश कर रहे थे। दरअसल यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम उन्हें बोलने की कितनी जगह देते हैं।

इसी तरह से 'पतंग' विषय पर बच्चों ने ढेरों सुंदर चित्र बनाए और अपनी बातें भी लिखी। लेकिन मुझे दस वर्ष की शाहिदा और बेबी की इन पंक्तियों ने सोचने को मजबूर किया – "हम लड़की न होते तो खूब पतंग उड़ाते। लड़की हूं, इसलिए मां मना करती है।" शाहिदा और बेबी की इन अभिव्यक्तियों का कोई सरल हल हमारे पास नहीं है क्योंकि हमारी सामाजिक मान्यताएं ऐसी हैं। इनके बारे में हम क्या करें हमें भी कुछ समझ में नहीं आता। बच्चों की इन बातों को हम उनकी माताओं के समक्ष मासिक बैठक में ज़रूर रखते हैं। उन्हें भी आश्चर्य होता है कि उनके बच्चे भी बस्ती की छोटी-छोटी चीज़ों को गहराई से महसूस करते हैं।

छुट्टियां यानी काम का बोझ

'गर्मी की छुट्टियों' का हमें अपने बचपन में बहुत इंतज़ार रहता था क्योंकि उस दौरान स्कूली बोझिल काम-काज से राहत मिलती थी। लेकिन कई बच्चों के संदर्भ में ये छुट्टियां कितनी उबाऊ और निरुत्साहित करने वाली हो सकती हैं इसका अंदाज़ा भी पहली बार बच्चों का लेखन पढ़कर ही लगा। इन छुट्टियों के बारे में विनोद ने लिखा है – "अम्मा-दादा छुट्टियां होते ही दुकान पर ले जाते हैं। रेहड़ी के साथ जाना पड़ता है। छुट्टियों में स्कूल का काम भी नहीं करता। कहानी पढ़ने का समय नहीं मिलता।"

इसी तरह से बिमलेश ने लिखा– "मुझे छुट्टियों में गांव जाना अच्छा नहीं लगता। मशीन चलाते हुए हाथ

दर्द होने लगता है। छुट्टियां होती हैं तो घर का काम ज़्यादा करना पड़ता है। छुट्टियां अच्छी नहीं लगती। खेलने नहीं देते। अपने साथ काम पर ले जाते हैं।''

ये कथन हमारे मन में बैठे 'छुट्टियों के रोमांच' की धारणा को तोड़ते हैं। और यह अहसास कराते हैं कि सबके लिए सब कुछ एक जैसा नहीं होता।

इन बच्चों के साथ काम करते हुए यह भ्रम भी टूटता है कि गांव-बस्ती के बच्चों का पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगता। हमें तो सदैव बच्चों के साथ बातचीत से यह महसूस हुआ है कि इनका पढ़ने-लिखने में खूब मन लगता है। लेकिन शायद उन्हें इतने अवसर नहीं मिल पाते। एक बार फिर विनोद की बात को याद कीजिए – ''कहानी पढ़ने का समय भी नहीं मिलता।''

कुल मिलाकर बच्चों की इन स्वतंत्र अभिव्यक्तियों से समझ में आता है कि बच्चों की उक्त बातें उनकी लिखित भाषा के विकास के साथ-साथ उनकी अपनी दुनिया व उनकी सोच को बताती हैं। बच्चों का स्वतंत्र लेखन उनकी रचनाशीलता को और उर्वर करता है। केवल हमें ज़रूरत है उन्हें भरपूर मौके देने की जो हमें और हमारे स्कूलों को करना चाहिए।

कमलेश चंद्र जोशी: लखनऊ में नालंदा संस्था के साथ काम करते हैं।
चित्र – राजेश यादव। राजेश इटारसी में रहते हैं।

कहानी

अनारको यमत लोक में

सत्यु

चित्र: विप्लव शशि

मान लो तुम गरमी की झक दुपहरिया में गली में निकले हो। पूरी गली में कोई भी इन्सान नहीं, सारे दरवाज़े बंद। घूरे के पास एक दो जवान कुत्ते हांफते हुए। धूप इतनी तेज़ कि लगे कहीं शीशे-सी चटक न जाए। गरमी भी लगे, पसीना भी आए और अच्छा भी लगे। एकदम अकेला अकेला–सा। तो मान लो ऐसी ही एक दुपहरिया में तुम चले जा रहे हो अकेले-अकेले। बीच में से निकल कर दूसरी गली में चले जाते हो। और फिर उस टूटे मकान के पास पहुंचते हो जिसके किनारे बंसी हलवाई पजामा उठाकर पेशाब करता है और उस टूटे मकान के अंदर तुम्हें दिखता है – एक जादूगर। लंबा काला चोगा पहने हुए, सिर पर लंबी काली टोपी, हाथ में

छड़ी लिए मुस्कुराते हुए। बिल्कुल जादूगर जैसा जादूगर। गली की दुपहरिया में जब तुम बिल्कुल अकेले हो और अचानक ऐसा एक जादूगर तुम्हें दिख जाए, तो तुम क्या करोगे? तुम चौंक जाओगे, थोड़ा पीछे हट जाओगे, झटके से, फिर ठिठक कर रुक जाओगे और उस जादूगर को देखने लग जाओगे। सारी दुनिया से बेखबर।

तो आज के दिन अनारको भी यही कर रही थी। भरी दुपहरिया, अम्मी जैसे ही सोने चली गई, अनारको किताबों को पटककर घर से बाहर आ गई थी। जेब में थी आम की केरी। बस यही कुतरते कुतरते चली आ रही थी। फिर अचानक सामने से जादूगर। सो ठिठकी खड़ी देखती रही।

तभी जादूगर ने कहा, "मैं तुम्हारा यहां इन्तज़ार कर रहा था।" अनारको को लगा, जादूगर किसी पिक्चर के हीरो जैसा बोल रहा था। कहीं ढिश्यूँ भी नहीं करने लगे, वह सोचने लगी। पर नहीं, ये तो पक्का जादूगर था। सो उसने छड़ी घुमाई और वहां एक सुंदर बगीचा बन गया। घास उग आई, उस पर चिड़िया फुदकने लगी, फूल लहरा रहे थे, और तो और पांच-पांच फव्वारे चलने लगे। अनारको घास पर बैठने को हुई तो जादूगर ने कहा, "लो बातचीत का माहौल बन गया।" फिर वही पिक्चर के हीरो जैसी बात! खैर तब तक जादूगर अपनी टोपी उतारकर उसमें से दरवाज़े निकालने लगा था। देखते देखते उसने तीन बड़े-बड़े दरवाज़े निकाल लिए, छड़ी

घुमाई और वहीं घास पर दरवाज़े खड़े हो गये। अगल-बगल कुछ नहीं, बस तीन दरवाज़े सारी घास पर सीधे खड़े। ये लो, ये भी कोई बात हुई, अनारको ने सोचा। जादूगर ने कहा, "इनमें से किसी भी दरवाज़े से तुम एक अलग दुनिया में पहुंच सकती हो।" अनारको ने सोचा, अम्मी तो सो रही हैं, अभी साथ खेलने को भी कोई नहीं है, फिर अपना क्या जाता है। सो उसने आगे बढ़ के एक दरवाज़ा खोला और उसके पार हो गई।

जहां पहुंची वहां उसके चारों तरफ ऊंचे ऊंचे मकान थे। पता नहीं कितने मंज़िलवाले। सारे मकान जैसे आसमान को चीरते हुए उसके ऊपर पहुंच गए हों। और आसमान चिंदी-चिंदी हो गया हो। मकानों में सड़क किनारे दरवाज़े ही दरवाज़े थे जिनमें से लोग आ जा रहे थे। सब सफेद सूट पहने हुए, औरतें भी और मर्द भी। हाथ में सफेद सूटकेस और सबके कानों में दो बड़े-बड़े सफेद बटन जैसे। कोई किसी से बात नहीं करता, बस अपने आप में मगन। जैसे दूर से आती कोई आवाज़ सुनने में आसपास से बेखबर हो। सब लोग सफेद सूट पहने काला चश्मा लगाए अलग-अलग गाड़ियों में घुसते हुए। सारी गाड़ियों की खिड़कियां काली-काली, यहां तक कि सामने के शीशे भी काले। अंदर झांकों तो अपना मुंह दिखे। अनारको वहां खड़े-खड़े काली खिड़कियों के अंदर काले चश्मों के पार आंखों का रंग बांचने की कोशिश कर ही रही थी कि इतने में जादूगर दिख गया, सफेद सूटवाले इंसानों के बीच काला चोगा और लंबी काली टोपी पहने हुए – सबसे अलग। जादूगर के कानों में कोई बटन नहीं लगा था और वह चश्मा भी नहीं पहने था। सो अनारको की जान में जान आई।

"घबराना नहीं, ये भी अपने जैसे ही इंसान हैं" जादूगर ने अनारको के पास आकर कहा। अनारको ने कहा, "फिर यहां सबके कानों पर सफेद-सफेद बटन क्यों लगे हैं, और कोई किसी से बोलता क्यों नहीं?" जादूगर उसके कानों के पास आकर फुसफुसाने लगा, "यहां कोई एक दूसरे से बात नहीं करता – सब सिर्फ यमत की आवाज़ सुनते हैं। इन बटनों के ज़रिए यमत कभी गाने सुनाता है, कभी चुटकुले, कभी कहानियां पढ़ता है और कभी लोरियां गाता है।" अनारको ने पूछा, "और यह यमत कौन है?" जादूगर ने और भी धीरे-धीरे फुस-फुसाकर कहा, "यमत यहां का राजा है, पर वह 'चंदामामा' की कहानियों वाला राजा नहीं। मज़े की बात तो यह है कि यहां ज़्यादातर लोगों को

मालूम ही नहीं हैं कि यमत उनका राजा है।" अनारको को यह बात अजीब लगी, पर यहां तो सब कुछ अजीबो-गरीब था। अनारको ने पूछा, "पर यहां के लोग अपने कानों से बटन हटा क्यों नहीं लेते", और उसका मन करने लगा कि दौड़ के जाए और किसी के कानों से बटन निकालकर मुर्गे की नकल में उसके कान में चिल्लाए 'कुटरूंऽऽऽ कूं. . .।' जादूगर ने जवाब दिया, "लोग बटन इसलिए लगाए रखते हैं क्योंकि उन्हें अच्छा लगता है। और दूसरी बात . . ", जादूगर ने इतना कहा ही था कि अनारको ने देखा ऊपर से चील जैसा उड़ता हुआ हवाई जहाज़ सामने नुक्कड़ पर मंडराने लगा, जहां एक नौजवान लड़की अपने कान से बटन निकाल रही थी। उस छोटे से हवाई जहाज़ से लाल-सी एक रोशनी निकली और देखते-देखते लड़की जैसे जल कर गायब हो गई। यह सब अनारको के पलक झपकते हो गया और उसने देखा जहां वह लड़की खड़ी थी वहां सड़क पर जैसे उस लड़की की परछाई चिपक गई थी मानों बटन निकालने की कोशिश में लड़की का फोटो हो वहां। फिर अनारको ने अगल बगल आगे पीछे नज़र दौड़ाई – पूरी सड़क पर यहां-वहां ऐसी ही परछाइयां चिपकी हुई थीं। अलग-अलग लोगों की बटन निकालते – कहीं झुके, कहीं बैठे, कहीं खड़े लोग। अनारको का खून जैसे पानी हो गया। उसका जी बिल्कुल अंदर से कड़वा हो गया। बगल से जादूगर ने उसका हाथ पकड़ा,

कहा, "घबराओ नहीं तुम इस दुनिया की नहीं हो, यमत तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।" अनारको ने कुछ कहा नहीं बस सड़क देखते-देखते चलने लगी ताकि किसी परछाई पर पांव न पड़े।

सामने अनारको को एक मकान की ऊंची-ऊंची दीवारें दिख गईं, कतारों में अंदर जाते बच्चे दिख गए। और अनारको ने उस मकान को पहचानने में कोई गलती नहीं की। जादूगर ने कहा, "ये यहां का स्कूल है, अभी इनके खेल का पीरियड चल रहा है तो तुम चाहो तो अंदर जाकर देख सकती हो।" जादूगर और अनारको स्कूल के अहाते में आए तो अनारको ने सोचा अभी उछलकूद करते दौड़ते बच्चे दिखेंगे। पर यहां तो और ही नज़ारा था। छोटे-छोटे, फूल-पत्ती के भाई बमकू के बराबर पांच-पांच साल के बच्चे छोट-छोटे कमरों में अलग-अलग बैठे टेलीविज़न देख रहे थे। सबके अलग-अलग कमरे, सबके अलग-अलग टेलीविज़न। जादूगर ने समझाया कि यहां पढ़ाने के लिए मास्टर लोग नहीं होते, सारी पढ़ाई टेलीविज़न से होती है। "पर अभी तो खेल का पीरियड है", अनारको ने कहा। जादूगर ने एक टेलीविज़न की ओर इशारा किया, "तभी तो सारे बच्चे टेलीविज़न पर खेल देख रहे हैं।" तब तक अनारको टेलीविज़न देखने लगी थी। बहुत दूर किसी जगह पांच साल के बच्चों का कोई कॉम्पिटिशन हो रहा था। बच्चे समुंदर किनारे बालू के मकान बना रहे थे और सबमें होड़ लगी हुई थी कि कौन सबसे जल्दी, सबसे बढ़िया मकान बना ले। टेलीविज़न में दिख रहा था कि बच्चे बिल्कुल पसीने से लथपथ, हांफते हुए अपने-अपने बालू के मकान पर लगे हुए। इधर स्कूल के सारे बच्चे टेलीविज़न देखने में लगे थे। पर्दे पर अब सिर्फ एक बच्चे का चेहरा था, जो फर्स्ट आया था। बमकू से थोड़ा ही बड़ा होगा, उसका चेहरा पसीना पसीना हो रहा था। और उसकी आंखें थकी-थकी लग रही थीं। वह बता रहा था कि कैसे उसके मां-बाप ने उसे दो साल की उम्र से इस कॉम्पिटिशन के लिए तैयार किया था। वह बच्चा बताता ही जा रहा था कि आगे चलकर वह और भी बड़ा इनाम पाना चाहता है। इसके बाद खेल का पीरियड खत्म हो गया और पर्दे पर नैतिक शास्त्र की कक्षा शुरू हो गई। सफेद सूट, सफेद टाई पहने एक आदमी यह बता रहा था कि अच्छे बच्चे बनने के लिए क्या-क्या करना पड़ता है। आदमी बोल रहा था और बच्चे टेलीविज़न के पर्दे को वैसे ही देख रहे थे जैसे खेल की पीरियड में। अनारको को नैतिक शास्त्र का पीरियड कभी अच्छा नहीं लगा सो उसने जादूगर की उंगली पकड़ी और कहा 'चलो'। स्कूल के अहाते से बाहर निकलते

निकलते अनारको ने कहा, "कैसा स्कूल है, क्यों खेल के पीरियड में बच्चे सिर्फ कॉम्पिटिशन ही देखते रहते हैं – खुद नहीं खेलते?" जादूगर ने कहा, "खुद भी खेलते हैं – जब उनके खुद खेलने की बारी आती है तो वे टेलीविज़न पर बटन दबा-दबा कर पर्दे पर बालू के मकान के नक्शे बनाते हैं।" अनारको का जी पहले से कड़वा था सो वह और कड़वा हो गया। उसने झुंझलाते हुए पूछा, "और यह यमत है कौन?" जादूगर ने कहा, "तुम्हें यमत को देखना है, चलो वहीं चलते हैं।"

फिर जादूगर और अनारको एक बड़े से मकान में पहुंचे। बहुत बड़ा गोल-सा मकान और उसके बीच में बड़ा-सा चबूतरा। मकान क्या वह तो महल समझो और उसकी हर एक मंज़िल पर छोटे-छोटे कमरे बने थे जिनमें लोग कुर्सियों पर बैठे काम करते दिख रहे थे। अहाते में कोई नहीं था। और उसके बीचों-बीच कांच की दीवारों के बीच एक आदमी बैठा था। अनारको जादूगर के साथ उसके पास गई तो देखा वह आदमी नहीं बल्कि मशीन था। उसमें यहां वहां कलपुर्जे दिख रहे थे, छोटी-छोटी लाल हरी बत्तियां जल रही थीं और धीमें-धीमें

अजीब-सी आवाज़ें आ रही थीं। जादूगर ने कहा, "यही यमत है।" अनारको थोड़ी चौंक गई, यमत ऐसा पिद्दा-सा होगा उसे भान नहीं था। लेकिन यमत की ताकत का भान तो उसे हो ही गया था सो वह सहमते-सहमते कांच की दीवार के पास पहुंच गई। यमत जिस कुर्सी पर बैठा था उसके नीचे चारों तरफ टेलीविज़न के पर्दे लगे थे। और उन पर किसी कविता की पंक्तियां एक के बाद एक आ रही थीं। अनारको ने कुछ देर ठहर कर उस कविता के कुछ हिस्से पढ़े। एक के बाद एक पंक्तियां आती गईं और अनारको पढ़ती गई।

यन्त्र ही यन्त्र है
यन्त्र का तन्त्र है
यन्त्र का मन्त्र है
यन्त्र ही मन्त्र है
यन्त्र ही तन्त्र है
यन्त्र तन्त्र मन्त्र है
मन्त्र ही मन्त्र है
मन्त्र का तन्त्र है
मन्त्र का यन्त्र है
मन्त्र ही यन्त्र है
मन्त्र ही तन्त्र है
मन्त्र तन्त्र यन्त्र है
तन्त्र ही तन्त्र है
तन्त्र का यन्त्र है
तन्त्र का मन्त्र है
तन्त्र ही मन्त्र है
तन्त्र ही यन्त्र है
तन्त्र यन्त्र मन्त्र है

पहले तो अनारको को लगा कि वह, "अक्कड़ बक्कड़ बम्बे बो" या "नीना की नानी की नाव चली" जैसी कोई कविता थी पर जैसे-जैसे वह पढ़ने लगी उसे काफी कुछ समझ में आने लगा। फिर उसने कहा, "हुम्म तो ये बात है", और जादूगर की तरफ देखा। जादूगर समझ गया था कि अनारको समझ गई है। पूछने को कुछ था नहीं और इस महल के अंदर अनारको का बात करने का जी नहीं हो रहा था सो वह जादूगर के साथ चुपचाप महल के बाहर आ गई।

काफी दूर चुपचाप चलने के बाद वे बड़े रास्ते पर पहुंच गए। दोनों तरफ से गाड़ियां आ जा रही थीं। तेज़ी से भागती गाड़ियां, काले शीशों वाली। अनारको और जादूगर किनारे-किनारे चल रहे थे। रास्ते के किनारे एक बड़ा-सा मकान था जिसमें सामने लाल पीली बत्तियों में बड़े-बड़े अक्षरों में होटल लिखा था। प्लास्टिक के चटकदार फूलों से सजा हुआ था होटल का दरवाज़ा और दरवाज़े के ऊपर एक बड़ी-सी घड़ी थी। अनारको जहां खड़ी थी वहां से होटल का पिछवाड़ा भी दिखता था। उसने देखा वहां दो तीन औरतें पुलिस की वर्दी पहने बंदूक

लिए गश्त कर रही थीं। अनारको ने आज तक औरत पुलिस नहीं देखी थी, वह भी बंदूक थामे। बगल से जादूगर ने कहा, "यहां के लोग कहते हैं कि यहां औरतों और मर्दों में पूरी बराबरी है। मर्द जो भारी काम करते हैं, औरतें भी वह सब करती हैं।" अनारको ने सोचा, "ऐसी बराबरी से क्या मतलब, पुलिस बनके बंदूक लेके लोगों को डराना कोई अच्छा काम है क्या।" होटल के पीछे के दरवाज़े पर लंबी-सी लाइन लगी हुई थी। लाइन में लगे सारे लोग फटे कपड़े पहने हुए, उनके चेहरे मुरझाए हुए। मर्द भी और औरतें भी। और सब पर निगरानी रखती, गश्त करती औरत पुलिस। अनारको और जादूगर औरत पुलिसों की नज़र बचाकर पीछे के दरवाज़े से होटल में घुस गए। अंदर एक बड़ा-सा कमरा था जसके बीचों-बीच एक टेबल लगी थी। टेबल के किनारे कुर्सियों पर बैठे लोग थालियों में से खाना मुंह में डाल तो रहे थे, चबा भी रहे थे पर निगलते नहीं थे। बस खाना चबा-चबाकर एक दूसरी थाली में उगलते जा रहे थे। जिस बात के लिए अम्मी अनारको को इतनी डांट लगाती है वही यहां सब लोग कर रहे थे। बस खाना चबाते जाते और उगलते जाते। जादूगर ने कहा, "ये लोग खा नहीं रहे, काम कर रहे हैं। इनका काम खाना चबाना है, बदले में उनको पैसे मिलते हैं।" "ये भी कोई काम हुआ?" अनारको ने पूछा। जादूगर ने बड़े गंभीर होकर कहा, "देखा नहीं बाहर इसी काम को करने के लिए कितनी लंबी लाइन लगी हुई है? पैसे के लिए सब कुछ करना पड़ता है।" जादूगर फिर से फिल्म के हीरो जैसे बात करने लग

गया था। खैर। अनारको ने देखा बीच-बीच में होटल के कर्मचारी उस टेबल पर से उगले हुए खाने वाली प्लेट उठा-उठाकर सामने के कमरे में ले जा रहे थे। अनारको जादूगर का हाथ पकड़कर उनके पीछे-पीछे सामने के कमरे में चली गई।

इस कमरे में खूब सजावट थी, अलग-अलग टेबल लगे थे। कुर्सियां लगी थीं गद्‌देदार। सफेद सूट वाले लोग उन पर बैठे खाना खा रहे थे, बड़ी तेज़ी से। बस निगलते जा रहे थे। जादूगर ने फुसफुसाकर कहा, "ये लोग खाना खाने में ज़्यादा समय नहीं लगाते — तभी तो पीछे के कमरे का चबाया और उगला हुआ खाना खाते हैं। चबाने की मेहनत नहीं करनी पड़ती और समय भी बचता है।" जादूगर की बात सुनकर और उन सफेद सूटवालों को खाते देखकर अनारको का तो जी मितलाने लगा था। लग रहा था कि दोपहर का खाया सारा कुछ वह वहीं उलट देगी। फिर उसने सोचा कहीं वह उल्टी कर दे और होटल के कर्मचारी उसी को प्लेट में डालकर किसी सफेद सूट वाले को परोस दें तो? सो वह दौड़कर सामने के दरवाज़े से मकान के बाहर हो गई। पीछे-पीछे जादूगर।

सड़क पर आकर अनारको का जी कुछ अच्छा तो हुआ फिर भी उसे कैसा कैसा लग रहा था। अनारको ने जादूगर से कहा, "चलो किसी जंगल में चलते हैं।" फिर रुककर पूछा, "जंगल है भी यहां?" जादूगर ने कहा, "यहां सब कुछ है। यहां सबकी अपनी-अपनी जगह है और सब अपनी-अपनी जगह पर हैं। चलो यमत को पूछते हैं, यहां के जंगल किधर हैं। यमत सारी जानकारी रखता है। सारे सवालों का जवाब जानता है।"

अनारको और जादूगर वापस उस गोल महल के अंदर के चबूतरे पर पहुंचे। कांच की दीवार के एक तरफ जाली से ढंका हुआ एक छेद था। उसी में से सवाल पूछने थे। अनारको ने पूछा, "मैं यहां के जंगल देखना चाहती हूं, किधर है आपका जंगल?" मशीन में से आवाज़ आई, "जंगल को जाने की गाड़ी स्टेशन से हर तेरह मिनट पर छूटती है। अगली गाड़ी तीन बजकर सैंतालीस मिनट पर छूटेगी।" फिर थोड़ी रुककर आवाज़ आई, "सभी गाड़ियां समय से चल रही हैं, सभी गाड़ियां समय से चल रही हैं।"

जादूगर के साथ अनारको स्टेशन पहुंची। चलते-चलते अनारको थोड़ी थक गई थी, पर तीन बज के सैंतालीस मिनट बजने ही वाले थे। सो वह लपककर गाड़ी के अंदर बैठ गई। अनारको ने पीछे देखा तो जादूगर ट्रेन के बाहर ही रह गया था। और डब्बे के दरवाज़े अपने आप बंद हो गए। अनारको घबरा गई, तब तक गाड़ी धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी और

अनारको को मालूम ही नहीं था कि दरवाज़ा कैसे खोले। पर जादूगर परेशान नहीं दिखा। वह हाथ हिला हिलाकर अनारको की तरफ देखकर मुस्करा रहा था। सो अब अनारको अकेले ही चली जंगल।

गाड़ी जहां रुकी वहां रंगीन बत्तियों से बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था 'जंगल'। गाड़ी से और भी लोग उतरे और प्लेटफार्म पर भीड़ हो गई। सारे वैसे ही लोग जैसे अनारको ने पहले देखे थे, सबके कानों पर बटन, पर सफेद सूट के बदले उन्होंने सफेद कुर्ता-पाजामा पहना हुआ था। उनकी आंखों पर चश्मा भी नहीं था। प्लेटफार्म से निकलकर सब लोग बसों में चढ़ रहे थे। अनारको को बसों के हॉर्न की आवाज़ बड़ी भली लगती – पों-पों, चैं-चैं, भोपुं-भोपुं की आवाज़ों से उसे मज़ा आता था। पर यहां कोई पों-पों नहीं था, ज़रा भी शोर नहीं और कोई धकमपेल भी नहीं, सब लोग लाइन में लगे हुए। सारी बसें लाइन में लगीं – एक के पीछे एक निकलती हुई। अनारको एक बस में खिड़की के पास बैठ गई पर बस इतनी तेज़ चल रही थी कि बाहर का कुछ भी दिख नहीं रहा था। अनारको बोर हो गई। उसने बस के अंदर देखा। सारे लोग सो रहे थे। सो अनारको और भी बोर हो गई।

बस जहां रुकी वहां उतरते ही यमत के जैसा ही एक आदमी-मशीन था। फर्क सिर्फ इतना था कि इसका कद और भी छोटा था और चारों ओर कांच की दीवारें हरे रंग की थीं। उसके नीचे के टेलीविज़न पर वैसी ही कविताओं की पंक्तियां एक-के-बाद एक पर्दे पर आ रही थीं।

जंगल ही जंगल है।
जंगल से दंगल है।
दंगल ही दंगल है।
दंगल में मंगल है।
जंगल से मंगल है।
मंगल ही मंगल है।
मंगल, मंगल, मंगल है।

वैसी ही कविता जैसी अनारको ने पहले पढ़ी थी। अनारको को एक जैसे कविताएं पढ़ना अच्छा नहीं लगता सो वह पढ़ना छोड़ आगे बढ़ गई। आगे जो देखा तो अनारको बिल्कुल चौंक गयी। बड़े ही अजीब पेड़ थे यहां। यहां के पेड़ थोड़े-थोड़े तो पेड़ जैसे लगते थे पर उनमें टहनियों की जगह थे कुर्सी, टेबल, अलमारी वगैरह! कहीं पर टहनियों की जगह थी नाव, कहीं दरवाज़े की चौखट और उन पर थीं पत्तियां। खूब चमकीली हरी-हरी। अनारको अब तक एकदम चकरा गई थी। उसने सोचा अगर ये पेड़ हैं तो इनमें कुर्सी, टेबल, नाव कैसे उग आए हैं, और अगर ये कुर्सी टेबल की दुकान है तो फिर पत्तियां कैसे उगी हैं? थोड़ा आगे बढ़ी तो चारों तरफ वैसे ही

वाले पेड़। अनारको को लगा वह कुर्सी टेबलों के बाज़ार में आ गई है जैसा चटपटगंज में हर इतवार को लगता है। उसने सोचा जादूगर होता तो उस से इस सबका मतलब पूछ लेती। उसका मन जादूगर के लिए उदास भी होने लगा था। खैर, उसने सोचा यमत के पास सारे सवालों का जवाब होता है। चलो उसी से पूछते हैं।

अनारको बस अड्डे पर यमत के पास पहुंची औद छेद में से पूछा, "यहां के पेड़ ऐसे क्यों हैं?" अंदर से मशीनी आवाज़ आई, "साफ साफ पूछो — कैसे पेड़?" अनारको ने कहा, "यहां के पेड़ों में टहनियों की जगह कुर्सी टेबल क्यों हैं।" यमत की आवाज़ आई, "पहले पेड़ों से लकड़ियां काटनी पड़ती थीं। फिर उनको काटो, छीलो, सीधी पट्टियां निकालो, रंदा चलाओ, फिर कुर्सी-टेबल बनाओ। बहुत मेहनत जाती थी उसमे और समय भी ज़्यादा लगता था। सो हमने पेड़ों में ऐसी दवा डाली कि सीधे कुर्सी-टेबल उग आएं। सारी मेहनत से छुट्टी। और

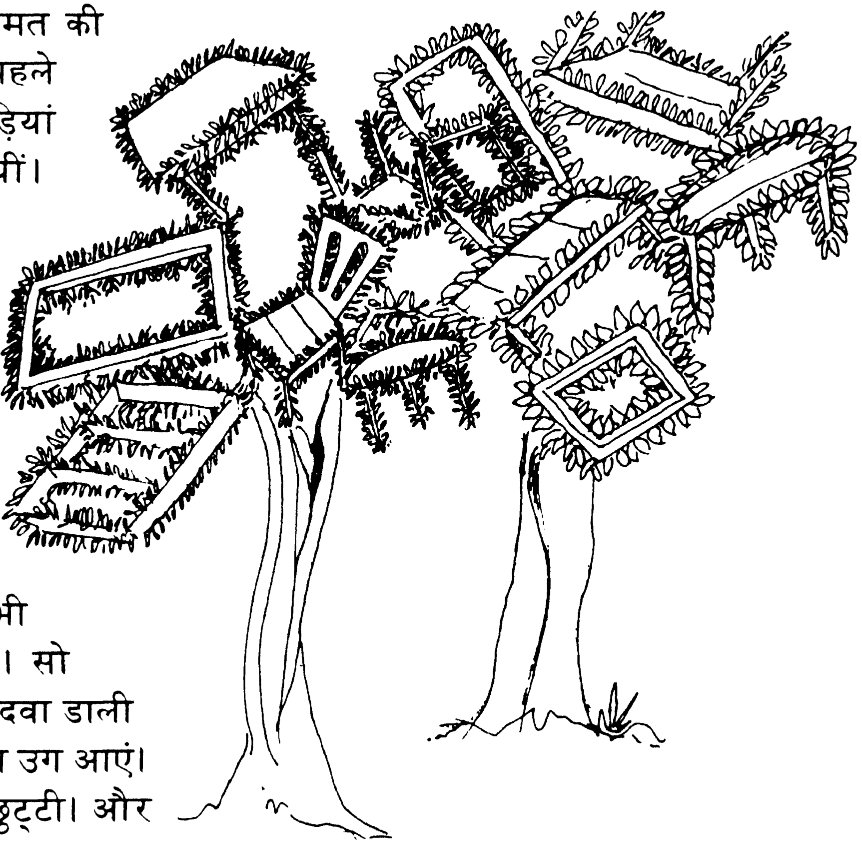

समय भी बचता है।" अनारको ने तपाक से पूछा, "समय बचाकर क्या होता है? खाली समय में लोग करते क्या हैं?" फिर यमत की आवाज़ आई, "खाली समय में लोग जंगल घूमने आते हैं।" अनारको को गुस्सा आ रहा था यमत के जवाब सुनकर। फिर भी उसने सोचा चलो और सवाल पूछते हैं। पूछा, "यहां जंगल में फूल क्यों नहीं दिखते? हमारे चौठेयां के जंगल में तो बहुत फूल होते हैं। और चिड़ियां क्यों नहीं हैं, एक भी?" तभी उसको लगा उसके आसपास चमेली की महक

मंडरा रही है। टेलीविज़न के पर्दे पर चमेली के फूल दिख रहे थे। फिर महक हरसिंगार की हो गई और पर्दे पर हरसिंगार के फूल दिखने लगे – सफेद चटक। फिर एक-के-बाद एक फूल दिखने लगे, उनकी अलग-अलग महक आने लगी। मशीन में से आवाज़ आई, "और फूल देखना हैं?" अनारको ने झट कहा, "नहीं, बस बस।" टेलीविज़न के पर्दे पर अब चिड़ियां दिखने लगी, आवाज़ें आने लगीं। कभी कौवे का कांव कांव, कभी मोर की लंबी तीखी आवाज़। अनारको अब वहां बिल्कुल नहीं रहना चाहती थी। इतना गुस्सा आ रहा था कि पूछो मत। फिर भी उसने जाते जाते पूछा, "और यहां कोई फल भी तो हैं नहीं, बेरियां, फालसे, आम वगैरह?" यमत ने कहा, "फलों की खेती देखने के लिए बारह नंबर की बस पकड़ो।"

बारह नंबर की बस से अनारको जहां पहुंची वहां खेत नहीं थे, कारखाने थे। किसी पर लिखा था जामुन, किसी पर अमरूद और किसी पर आम। अनारको आम वाले कारखाने के अंदर चली गई। अंदर जैसा नज़ारा अनारको ने कभी नहीं देखा था। चारों तरफ पटरियां बिछी थीं, पटरियों पर गमलों की शक्ल में गाड़ियां चल रही थीं धीरे-धीरे। एक तरफ एक मशीन से गमलों में गुठली बोई जा रही थी। फिर गुठली के साथ गमले आगे बढ़ जाते, उन पर पानी का फव्वारा छूटता। बढ़ते-बढ़ते आम

का पौधा उग आता, फिर पेड़ बन जाते। सब गमलों पर, और पटरियों पर लुढ़कते हुए। एक तरफ कुछ लोग एक जगह बैठ कर पेड़ों से आम तोड़-तोड़ कर इकट्ठा कर रहे थे। बिल्कुल पीले पीले आम, सब एक जैसे। अनारको को आम बहुत पसंद था पर यहां आमों का ढेर देखकर भी उसे ज़रा भी लालच नहीं आया। आई तो एक लंबी-सी सांस। उसका गुस्सा भी बढ़ रहा था।

सो वह वापस प्लेटफार्म पर जाकर गाड़ी में बैठ उस जंगल से लौट चली। गाड़ी में बैठे-बैठे ही उसने मन ही मन कुछ ठान लिया। गाड़ी से उतरी तो चल दी उसी गोल महल की ओर जहां यमत था। महल के दरवाज़े से चबूतरे पर चहलकदमी करता हुआ जादूगर दिख गया। अनारको पास गई तो जादूगर ने कहा, "मैंने सोचा, तुम्हारा यहीं इंतज़ार किया जाए। मुझे मालूम था तुम यमत के पास आओगी।" अनारको का मन हुआ कि वह जादूगर से पूछे, "तुम कैसे समझे कि मैं यहां आऊंगी।" पर उसने पूछा नहीं। क्योंकि उसे तो यमत से सवाल पूछने थे। सो वह यमत के पास गई और छेद के पास मुंह ले जाकर पूछा।

"जाड़े की सुबह हरसिंगार के फूल चुनने का मज़ा कैसा होता है?", मशीन में से कोई आवाज़ नहीं आई। बस घिर्र घिर्र की आवाज़ आती रही, इधर उधर कुछ लाल हरी बत्तियां जलने बुझने लगीं।

अनारको ने दूसरा सवाल पूछा, "ये बताओ अकेले में नदी किनारे बैठने में कैसा मज़ा आता है और वह भी तब जब सूरज पहाड़ों के पीछे ढल रहा हो?"

मशीन में से घिर्र की आवाज़ तेज़ हो गई। कई और लाल हरी बत्तियां चटपटाने लगीं।

अनारको पूछती गई, एक के बाद एक सवाल, "चांदनी रात को बाहर मैदान में सबके साथ छू खेलने में कैसा मज़ा आता है?"

"बारिश की झमझम में चड्डी पहने कीचड़ में छपक-छपक करने में कैसा मज़ा आता है?"

"जब अचानक किसी मन्त्री के मर जाने पर स्कूल में दूसरी घण्टी के बाद छुट्टी हो जाती है तो हो-हो करके चिल्लाते हुए भागने में कैसा मज़ा आता है?"

अनारको पूछती जा रही थी, खड़ी-खड़ी, छेद से मुंह लगाए। जादूगर वहीं चबूतरे पर बैठा हुआ था, उसके पीछे। हर सवाल के बाद मशीन की घिर्र-घिर्र की आवाज़ बढ़ती जाती और थोड़ी देर के बाद तो घर्राने की आवाज़ ज़ोर से आने लगी। घर्राने की आवाज़, पहियों के रुकने, पुर्ज़ों के टूटने की आवाज़ के साथ बढ़ती गई। लाल हरी

बत्तियां भी जब ज़ोर-ज़ोर से दपदपाने लगी थीं। टेलीविज़न के पर्दे पर आड़ी तिरछी लकीरें आने लगी थीं और लकीरें टूटती जा रही थीं, टूटती जा रही थीं।

अनारको ने आखिरी सवाल दागा।

"तुमने कल रात कौन-सा सपना देखा है?", उसने पूछा। बस घड़घड़ाते हुए यमत की मूर्ति टूटकर बिखर गई, सारे कलपुर्ज़े बिखर गए और सारी बत्तियां दपदपाकर बुझ गईं।

उधर चारों तरफ भूचाल जैसा होने लगा था – बड़े-बड़े महल भरभराकर गिर रहे थे, दीवारें टूट रही थीं, कांच के बड़े-बड़े टुकड़े झनझनाकर बिखर रहे थे, इधर उधर आग लगी थी, लपटें उठ रही थीं। लेकिन कहीं भी रोने चिल्लाने की आवाज़ें नहीं थीं। बल्कि हंसी ठहाकों की आवाज़ें गूंजने लगी थीं, एक साथ हज़ारों पैरों के थिरकने की आवाज़, एक साथ हज़ारों खुशियां शोर मचा रही थीं, उधर पीछे बैठा जादूगर ताली बजाने लगा था।

पीछे से खैनी ठोंकते हुए बंसी हलवाई चिल्लाया, "अरे अन्नों तू यहां दुपहरिया में खड़े-खड़े क्या कर रही है?", बंसी हलवाई एक हाथ में खैनी लिए दूसरे हाथ से हथेली पर थपथपा रहा था।

अनारको का ध्यान टूटा, उसका मन हुआ कि बंसी हलवाई से पूछे, "और तुम यहां खड़े-खड़े क्या कर रहे हो?", पर उसने जाने दिया।

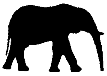

मन्यु: पूरा नाम मतीनाथ षडंगी। भोपाल गैस त्रासदी तथा अन्य जन आंदोलनों से जुड़े हुए हैं। लेखन में गहरी रुचि।

विप्लव शशि: बड़ौदा, गुजरात की एम. एस. यूनिवर्सिटी में फाइन आर्ट्स के स्नातक कोर्स के प्रथम वर्ष के छात्र।

पुस्तक अंश

कैसे सीखते हैं बच्चे

जॉन होल्ट

अनुवाद: सुशील जोशी

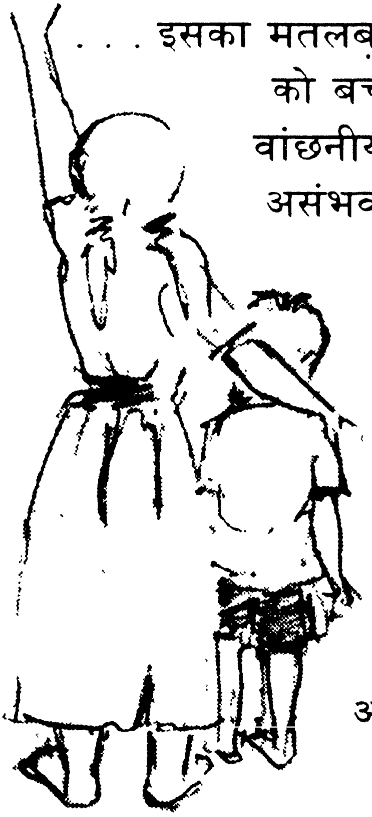

. . . इसका मतलब यह नहीं कि हमें अपने बेहतर ज्ञान व दक्षता को बच्चों से छिपाकर रखना चाहिए, ऐसा करना वांछनीय भी नहीं है और अगर वांछनीय हो तो भी असंभव है। परन्तु हमें इस बात के लिए सचेत रहना चाहिए कि उनका अज्ञान व अनाड़ीपन उनके लिए प्राय: पीड़ादाई होता है। इसलिए हमें सावधानी बरतनी चाहिए कि उनकी कमज़ोरियों में उनकी नाक न रगड़वाएं। कई पालक सब कुछ बड़े अच्छे से कर लेते हैं, मगर इसका मतलब यह नहीं कि वे अपने बच्चों के लिए अच्छे उदाहरण भी हों। कई बार ऐसे बच्चों को लगता है कि चूंकि वे अपने पालकों जैसे दक्ष होने की उम्मीद ही नहीं कर सकते तो कोशिश ही क्यों की जाए?. . .

साढ़े तीन साल की उम्र में लिज़ा एक बड़े परिवार की सबसे छोटी सदस्य थी। इस परिवार के सभी लोगों को पढ़ने और किताबों का शौक था। किताबें घर में हर जगह होती थीं – मेज़ों पर, कुर्सियों पर, बिस्तरों पर, फर्श पर, हर जगह। फिर भी परिवार पढ़ने को लेकर काफी सहज था; किसी भी बच्चे को पढ़ने के लिए ठेला नहीं गया था और लिज़ा को भी ठेलने की कोशिश कोई नहीं करता था। लिहाज़ा एक दिन जब उसने आक्रामक ढंग से कहा कि, "मैं पढ़ सकती हूं!" तो मैं भौंचक्का रह गया। आश्चर्यचकित होकर मैंने कहा, "तो मैंने कब कहा कि तुम नहीं पढ़ सकती?" उसे ललकारने में कोई सार नहीं था। उसे पता था कि वह नहीं पढ़ सकती, उसे यह भी पता था कि मैं जानता हूं कि वह नहीं पढ़ सकती। ज़ाहिर है कि यह बात उसे बहुत अपमानजनक महसूस होती थी कि वह एक ऐसा काम नहीं कर सकती है जो उसके आसपास के सभी लोग – उसकी जानकारी के मुताबिक तो पूरी दुनिया के लोग कर सकते थे। उसके इस अहसास को बढ़ाया क्यों जाए?

कई साल बाद एक दोस्त ने मुझे अपनी बिटिया की कहानी सुनाई। तब वह एक साल की भी नहीं थी। उसके पास प्लास्टिक की एक छोटी सी सीटी थी, जिसे बजाना उसे बहुत अच्छा लगता था।

यह उसका प्रिय खिलौना था। एक दिन उसके माता पिता में से एक ने वह सीटी उठाई और यह देखकर कि उसमें रिकॉर्डर की तरह छेद बने हुए हैं – उन्होंने उस पर एक धुन बजाना शुरू कर दिया। थोड़ी देर तक तो माता पिता ने सीटी का आनंद लिया और फिर बिटिया को सीटी लौटा दी। यह देखकर वे आश्चर्य में डूब गए कि उसने उसे एक तरफ सरका दिया। उसके बाद से उसने एक बार भी सीटी को नहीं बजाया।

इस कहानी ने मुझे डैनी की याद दिला दी। वह तब ढाई साल का था। मुझे लगा कि उसे कुज़िनेयर तीलियां पसंद आएंगी। मैं यह भी देखने को उत्सुक था कि वह इन तीलियों के साथ क्या करेगा। तो एक दिन जब मैं उसके माता-पिता से मिलने गया तो अपने साथ

तीलियों का एक डिब्बा भी ले गया। हमने डिब्बा खोलकर उसे तीलियां दिखाईं। वह उन्हें देखकर मंत्रमुग्ध हो गया। जिस तरह आदिम लोगों के लिए कांच के मोती होते होंगे, ठीक उसी तरह उसे ये सैंकड़ों चमकीली रंगबिरंगी तीलियां दुनिया की सच्ची संपदा नज़र आ रही थीं। हमने डिब्बे को गद्दे पर उलटकर खाली कर दिया। थोड़ी देर तक तो वह उसी तरह बैठा रहा, तीलियों को अपनी उंगलियों पर से फिसलता देखता रहा। वह खुशी और रोमांच में डूबा हुआ था और ऐसा लग रहा था कि किस्से कहानियों का कोई कंजूस अपना धन लिए बैठा हो।

आज मैं जानता हूं कि मुझे करना तो यह चाहिए था कि उसे इन तीलियों से अपने ढंग से खेलने देता, अपने ढंग से आनंद प्राप्त करने देता, उसे अपनी आंखों और उंगलियों से इनके बारे में जानकारी प्राप्त करने देता, धीरे-धीरे इनकी संभावनाएं तलाशने देता। परंतु उस समय मुझे ऐसा लगा कि मुझे उसे कुछ 'सीखने' को प्रेरित करना चाहिए। सो अपने ढंग से, बिना यह तक कहे कि 'देखो', मैंने कुछ तीलियां उठाईं और उन्हें फर्श पर एक पैटर्न में जमाना शुरू कर दिया – मैंने सोचा कि वह मेरी नकल करेगा। डैनी के पिता भी मेरी मदद करने लगे, जल्दी ही हमने एक आसान-सा ढांचा खड़ा कर दिया। हमारा ख्याल था कि डैनी बड़ी आसानी से इसकी नकल कर सकेगा। इसे पूरा करके हमने उसकी ओर देखा। वह थोड़ी देर तक भावशून्य होकर हमारी ओर देखता रहा, फिर बिना एक लफ्ज़ भी बोले आगे बढ़ा और एक हाथ से इमारत को गद्दे पर ढहा दिया। हक्के-बक्के होकर हमने पूछा, "तुमने ऐसा क्यों किया?" वह बस हमारी ओर देखता रहा। मूर्खों की तरह हम अड़े रहे और फिर से एक इमारत बना दी। उसने एक बार फिर से उसे तहस नहस कर दिया। वह नाराज़ नहीं बल्कि दृढ़ दिख रहा था। हमने एक कोशिश और की, लेकिन उसका नतीजा भी वही रहा। अंततः हमें यह समझ आने लगा कि कुछ ऐसा हो रहा है जो हम नहीं समझ पा रहे हैं। और हमने डैनी को अपने ढंग से खेलने के लिए छोड़ दिया।

यह तो सही है कि बच्चों को ऐसे व्यक्तियों से बहुत प्रेरणा और सीखने में मदद मिलती है जो चीज़ों को उनसे बेहतर ढंग से कर सकें। ऐसे व्यक्तियों को प्रायः 'योग्यता के मॉडल' कहते हैं। परन्तु यह

बात हमें ध्यान में रखनी चाहिए कि यह योग्यता का मॉडल कभी कभार कुछ ज़्यादा ही योग्य होता है। बाल मनोविज्ञान के विशेषज्ञ 'शिशु शक्तिमत्ता' के बारे में काफी कुछ लिखते रहते हैं। उनका सिद्धांत यह लगता है कि शिशु और छोटे बच्चे सचमुच यह मानते हैं कि वे सब कुछ कर सकते हैं। बड़े होते हुए धीरे-धीरे ही वह सीखते हैं कि वे कितना कम कर सकते हैं। मैं इसे सही नहीं मानता, शिशुओं के लिए भी नहीं। मुझे यकीन है कि यह बात दो-तीन साल के बच्चों के बारे में भी सही नहीं है। वे भलीभांति जानते हैं कि वे कितना कम जानते हैं, कितना कम समझते हैं या कर सकते हैं। और यह अहसास कई मर्तबा उनके लिए काफी डरावना और अपमानजनक होता है।

इसका मतलब यह नहीं कि हमें अपने बेहतर ज्ञान व दक्षता को बच्चों से छिपाकर रखना चाहिए, ऐसा करना वांछनीय भी नहीं है और अगर वांछनीय हो तो भी असंभव है। परन्तु हमें इस बात के लिए सचेत रहना चाहिए कि उनका अज्ञान व अनाड़ीपन उनके लिए प्राय: पीड़ादाई होता है। इसलिए हमें सावधानी बरतनी चाहिए कि उनकी कमज़ोरियों में उनकी नाक न रगड़वाएं। कई पालक सब कुछ बड़े अच्छे से कर लेते हैं, मगर इसका मतलब यह नहीं कि वे अपने बच्चों के लिए अच्छे उदाहरण भी हों। कई बार ऐसे बच्चों को लगता है कि चूंकि वे अपने पालकों जैसे दक्ष होने की उम्मीद ही नहीं कर सकते तो कोशिश ही क्यों की जाए?

यही बात शिक्षकों के बारे में भी कही जाती है। बच्चे अपने से थोड़े बड़े बच्चों से काफी कुछ सीख पाते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि थोड़े बड़े बच्चे उन्हीं की भाषा में बात कर पाते हैं। इसका एक कारण यह हो सकता है कि बड़ा बच्चा कहीं ज़्यादा मददगार 'योग्यता मॉडल' होता है क्योंकि वह अपनी पहुंच में दिखता है। इसमें कोई शक नहीं कि किसी बच्चे की रुचि एथलेटिक्स या संगीत या नृत्य में है तो कभी-कभार, एकाध बार उत्कृष्ट वयस्कों को यह चीज़ें करते देखना काफी रोमांचक व प्रेरणादायक होगा। परन्तु रोज़मर्रा के अनुकरण के लिए यह विशेषज्ञ अपेक्षाकृत कम उपयोगी होते हैं; ज़्यादा उपयोगी होते हैं थोड़े बड़े बच्चे जो किसी भी चीज़ को छोटे बच्चों के मुकाबले थोड़ा बेहतर कर पाएं। स्कूल में मेरी

बांसुरी की बनिस्बत मेरे बिगुल को कहीं ज़्यादा बच्चे बजाकर देखना चाहते थे। उस समय तो मैंने सोचा नहीं था, लेकिन आज लगता है कि इसका कारण यह रहा होगा कि बांसुरी पर तो मैं विशेषज्ञ था लेकिन बिगुल पर उनकी तरह ठेठ नौसिखिया।

बहरहाल लिज़ा की बात पर लौटें। सबसे पहले लिज़ा ने ही मुझे यह बात सिखाई थी या यूं कहें कि उसने ही मेरी आंखें खोल दी थीं। तब वह चार साल की थी। मैं एक दिन उसके घर गया था। पढ़ने में उसकी रुचि का मुझे पता था। सो, मैं कुछ ऐसी सामग्री साथ लेता गया जिसका उपयोग मैं स्कूल में पढ़ना सिखाने के लिए करता था – ये कुछ चार्ट थे जिनका संबंध 'शब्द रंगों में' (Words In Colour) नामक विधि से था। इस समय तक मैं इतना तो समझ ही चुका था कि इस सामग्री को ज़बर्दस्ती थोपने की कोशिश करने का कोई फायदा नहीं है। बच्चे बहुत जल्दी ही सीख जाते हैं कि वयस्कों के अति उत्साह के प्रति सतर्क रहना चाहिए। तो मैंने तत्काल यह नहीं कहा कि "देखो लिज़ा, मैं तुम्हारे लिए कितनी ज़ोरदार चीज़ लाया हूं, देखोगी तो खुशी से उछल जाओगी. . .।" बल्कि मैंने चार्टों को अपने कमरे में छोड़ दिया। मुझे पता था कि जब वह वहां खोजबीन करने जाएगी, तब देख लेगी। और यही हुआ। कुछ दिनों बाद उसने मुझसे पूछा, "तुम्हारे कमरे में पड़े हुए वो बड़े-बड़े चार्ट क्या हैं?" मैंने कहा, "तुम्हारा मतलब वो रंगीन अक्षरों वाले बड़े-बड़े चार्ट?" "हां।" मैंने उसे बताया कि उनका उपयोग स्कूल में उन बच्चों के बीच करता हूं जो अभी पढ़ना सीख रहे हैं। उसने पूछा, "क्या मैं उनका उपयोग कर सकती हूं?" मैंने कहा, "हां, हां ज़रूर, यदि तुम चाहो तो कर सकती हो।" उसने कहा, "मेरा मतलब अभी कर सकती हूं क्या?" तो हम चार्टों को बैठक में ले आए। और कुछ चार्ट फैलाकर शुरू हो गए।

आमतौर पर इनका इस्तेमाल करते वक्त शिक्षक करते यह हैं कि किसी शब्द की ओर इशारा करके पूछते हैं कि वह क्या है। परन्तु अब तक मैं यह सीख चुका था कि बहुत छोटे बच्चों को भी यदि ऐसी जगह घेर दिया जाए, जहां उन्हें ऐसा उत्तर देना पड़े जो गलत

भी हो सकता है – तो वे बहुत डर जाते हैं, तथा सावधान व रक्षात्मक रुख अपना लेते हैं। मैंने किया यह कि लिज़ा को एक पोंइटर दे दिया और उससे कहा कि वह मुझसे पूछे कि कौन-सा शब्द क्या है, और यदि उसे पता हो, तो वही बता दे। दूसरे शब्दों में, मेरी कोशिश यह थी कि वह खतरे से बाहर रहे तथा खेल का नियंत्रण उसके हाथ में रहे।

कुछ समय तक हम इस तरह खेलते रहे। वह मुझसे शब्द पूछती, मैं बता देता। कभी-कभी उसे वह शब्द पता होता, तो वह बोल देती। मगर थोड़ी ही देर में, चन्द पलों में उसने खेल के नियम बदलना शुरू कर दिए, ताकि खेल को एक अलग ढंग से, अपने ढंग से खेल सके। परिवार के बड़े बच्चों का एक अच्छा दोस्त था, जिसका नाम था हेनरी हैरिसन। लिज़ा उसे जानती थी। अब लिज़ा करने यह लगी कि चार्ट पर किसी भी तीन या चार अक्षरों वाले शब्द की ओर इशारा करके बोलती, "हेनरी हैरिसन!" उसे इसमें खूब मज़ा आ रहा था। मैंने कोशिश की कि खेल वापस पटरी पर आए मगर कोई फायदा न हुआ। ज़ाहिर था कि वह न सिर्फ इस खेल से थक चुकी थी, बल्कि इसे नापसन्द भी करने लगी थी। एकाध मिनट बाद ही उसने कहा कि बस, अब और नहीं खेलना। हमने चार्ट उठाकर रख दिए। उस दिन के बाद से मेरे रहते उसने फिर कभी चार्ट देखने की इच्छा ज़ाहिर नहीं की।

यह एक रहस्य था। मैंने तो काफी सावधानी बरती थी कि उसे कटघरे में खड़ा न होना पड़े। उसने खुद इस सामग्री का उपयोग करने की इच्छा जताई थी। फिर क्यों वह इतनी जल्दी इससे ऊब गई? यही बात कुछ दिनों बाद, किसी अन्य सामग्री के संदर्भ में एक बार फिर हुई। कुछ समय बाद, काफी सोचने के उपरान्त ही मुझे कुछ भान हुआ कि माजरा क्या है। मैं चाहे जितनी कोशिश करता कि यह खेल उसके लिए भयजनक न बने, वह ऐसी जगह न खड़ी की जाए जहां उसे गलत होने का भय सताए, तो भी मैं यह बात नहीं छिपा सकता था कि यह एक ऐसा खेल था जिसके बारे में मैं सब कुछ जानता था और वह कुछ नहीं जानती थी। और यह बात ही इतनी अपमानजनक थी कि इसे बर्दाश्त करने की वह इच्छुक नहीं थी।

मुझे करना यह चाहिए था कि लिजा को उन चार्टों का उपयोग उसकी मर्ज़ी के मुताबिक करने देता, उसे समय देता कि वह (चाहे तो) इनके साथ खेले, कल्पना के घोड़े दौड़ाए, और मुझे दिखाए कि वह इनका क्या उपयोग करना चाहेगी — और चाहे तो इनके बारे में मुझसे सवाल करे। परन्तु यदि मैं और वह ये सब कुछ करते, तो भी मुझे इस बात में संदेह है कि वह इन चार्टों का उपयोग अपने आपको पढ़ना सिखाने के लिए करती, जैसी कि इनके लेखक *गैटेग्नो* की मंशा रही होगी। थोड़े दिनों बाद जब उसने वास्तव में यह काम (पढ़ना सीखना) किया, तो उसने सचमुच की किताबों का इस्तेमाल किया।

यह मान लेना एक बहुत बड़ी गलती होगी कि उक्त प्रतिक्रिया असाधारण या अनोखी या अस्वस्थ थी। यह बहुत ही मानवीय प्रतिक्रिया है, जो अमूमन वयस्कों और बच्चों दोनों में होती है। अधिकांश समय हममें से अधिकतर लोग ऐसे व्यक्ति का सामना करना कतई पसंद नहीं करते जो किसी चीज़ के बारे में हमसे बहुत ज़्यादा जानता हो। हालांकि मैंने स्कूली वर्षों में जिस बाल-सदृश कुतूहल को गंवा दिया था उसे काफी हद तक पुनः हासिल कर लिया है। मगर आज भी मुझे अक्सर अपने अन्दर इस प्रतिक्रिया का अहसास होता है। अभी कुछ ही दिन पहले की बात है। बॉस्टन लौटते हुए उड़ान में मुझे दो लोगों के पास बैठने का अवसर मिला जो आधुनिकतम जीव विज्ञान के बारे में जीवन्त चर्चा कर रहे थे। एक ओर तो मैं उनकी कही बातों और उनके बनाए चित्रों को लेकर अपनी रुचि को रोक नहीं पा रहा था। परन्तु जहां मैं उनकी चर्चा में से थोड़ा-बहुत अर्थ समझने की कोशिश कर रहा था, वहीं मेरे दिमाग का दूसरा हिस्सा काफी गुस्से से उनकी बातों के महत्व को नकारने पर तुला था।

अलबत्ता मैं अपने रक्षात्मक विचारों को कमोबेश रोक पाने में सफल रहा और सुनता गया। परन्तु प्रतिक्रिया मौजूद थी और यह लगभग उतनी ही तीव्र थी जितनी तब होती है जब मैं — उदाहरण के लिए — *साइन्टिफिक अमेरिकन* पत्रिका का कोई ऐसा लेख पढ़ता

हूं जो मेरे सिर के ऊपर से निकल जाता है। ये प्रतिक्रियाएं चाहे गर्व का विषय न हों, मगर कुदरती हैं। यहां तक कि अपने दिमाग के अंत:पुर में भी हम अपने आप को अनजान और बेवकूफ मानना स्वीकार नहीं करना चाहते। जब हमारा सामना किसी ऐसी चीज़ से होता है जिसे हम नहीं जानते तो हम यह कहकर अपना बचाव करने लगते हैं कि वह चीज़ जानने के योग्य नहीं है।

आज मैं नहीं मानता कि लिज़ा के मन में यह अहसास था। उसने कदापि यह फैसला नहीं किया था कि पढ़ना सीखने योग्य नहीं है। बल्कि उसकी तो शायद पढ़ना सीखने की बहुत इच्छा थी। उसकी नाराज़गी इस बात पर थी, और सही थी कि मैंने बिन बुलाए ही उसे सिखाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ ली थी। वह पढ़ना सीखेगी, तो अपनी मर्ज़ी से, अपने समय पर और अपने तरीके से। सीखने में आत्मनिर्भरता (स्वतंत्रता) की यह भावना, सीखने वाले की सबसे कीमती पूंजी है। हम लोग, जो घर पर या स्कूल में बच्चों को सीखने में मदद करना चाहते हैं, उन्हें बच्चों की इस बात का सम्मान करना व इसे प्रोत्साहित करना सीख लेना चाहिए।

स्वाभिमानी व संवेदनशील बच्चे प्राय: इस तरह की प्रतिक्रिया ज़्यादा देते हैं। मैं जानता था कि लिज़ा इसी तरह की बच्ची है। इसीलिए थोड़ा चिन्तित था कि जब वह स्कूल जाएगी और उसे औपचारिक शिक्षक (निर्देशों) के अधीन चलना पड़ेगा, तो पता नहीं क्या होगा। क्या वह इसका प्रतिरोध करेगी? लग रहा था कि शायद करेगी। खुशकिस्मती से उसने खुद ही पढ़ना सीखकर इस समस्या का समाधान कर दिया। कोई नहीं जानता कि उसने यह किया कैसे। वास्तव में यह एक ऐसी चीज़ है जिसके बारे में आमतौर पर हम बहुत कम जानते हैं। हर साल कई हज़ार बच्चे अपने आप पढ़ना सीख जाते हैं। शायद बेहतर होगा कि हम पता करें कि ऐसे कितने बच्चे हैं और उन्होंने अपने आपको कैसे सिखाया।

बहरहाल, लिज़ा एक *किंडरगार्डन* में गई। हालांकि वहां शिक्षक बच्चों को पढ़ना सिखाने या पढ़ने को प्रेरित करने की कोशिश नहीं करते। मगर ढेर सारी किताबें, पोस्टर, अक्षर और अन्य उपयोगी

सामग्री वहां मौजूद है। यहां, ऐसे बच्चों की भीड़ में जो उससे ज़्यादा पढ़ना नहीं जानते थे, लिज़ा ने महसूस किया होगा कि पढ़ना न आना कोई ज़िल्लत नहीं है। आगे चलकर शायद उसने फैसला किया होगा कि चूंकि बड़े लोग पढ़ सकते हैं, इसलिए अवश्य ही उन्होंने पढ़ना सीखा होगा। और यदि वे सीख सकते हैं तो वह भी सीख सकती है। नवंबर के अंत तक वह शुरुआती रीडर और वर्क-बुक घर लाने लगी थी। इनके साथ वह अपने आप कुछ-कुछ करती रहती थी। जब अगली गर्मियों में मैंने उसे देखा, तो वह दूसरी कक्षा या शायद तीसरी कक्षा के स्तर की किताबें पढ़ने लगी थी।

एक दिन मैं और वह दोनों बैठक में बैठे पढ़ रहे थे। सार्वजनिक पुस्तकालय के बच्चों के खण्ड में से वह हाल ही में चार किताबें लाई थी। इससे अधिक संख्या में वहां से किताबें नहीं मिल सकती थीं। उसने उनमें से सबसे रोचक नज़र आने वाली किताब उठा ली और एक बड़ी-सी कुर्सी में बैठकर शुरू हो गई। मुझे उसकी बुदबुदाहट सुनाई पड़ रही थी मगर मैं यह नहीं सुन पा रहा था कि वह कह क्या रही है। उसकी आवाज़ के उतार-चढ़ाव व उसकी चुप्पियों से मुझे यह आभास हुआ कि किताब में कई ऐसे शब्द थे जिन्हें वह जानती थी और देखकर पहचान लेती थी। मगर साथ ही ऐसे शब्द भी थे जिन पर उसे रुकना होता था, अनुमान लगाना होता था। अनुमान लगाने के लिए शायद वह ध्वनि संबंधी अपने थोड़े-बहुत ज्ञान का उपयोग करती थी, या शायद संदर्भ के आधार पर अटकल लगाती थी, या शायद दोनों का मिला-जुला इस्तेमाल करती थी। कुछ शब्दों को छोड़कर आगे बढ़ जाने में भी उसे कोई ऐतराज़ नहीं था। उसे यह ज़रूरी नहीं लगता था कि उसे हर शब्द आना ही चाहिए। परन्तु कभी-कभार वह किसी ऐसे शब्द पर पहुंच जाती जिसका न तो वह अनुमान लगा पाती, न अटकल काम आती और न ही उसे छोड़कर आगे बढ़ पाती।

उस दिन उसे एक ऐसा शब्द मिल गया। धीरे से वह अपनी कुर्सी से उतरी और किताब को पकड़े-पकड़े मेरी ओर आई। मैंने उसकी ओर देखा। उसके चेहरे पर कठोर भाव था। उसने किताब में एक

शब्द की ओर इशारा करके पूछा, "यह क्या है?" उसकी निगाहों में स्पष्ट चेतावनी थी, "मुझसे ऐसे सब सवाल पूछना मत शुरू कर देना कि – 'तुम्हें क्या लगता है कि यह क्या है?' या फिर कि 'क्या तुमने पता लगाने की कोशिश की है?' वगैरह। यदि मैं यह सब कर सकती तो तुमसे पूछने क्यों आती। बस, मुझे इतना बता दो कि यह शब्द क्या है।" मैंने उसे बता दिया। उसने सिर हिलाया, वापस अपनी कुर्सी पर बैठ गई और पढ़ना जारी रखा।

बाद में मैंने उसकी मां से पूछा कि लिज़ा कितनी बार कोई शब्द पूछने आती है। उसकी मां ने थोड़ा सोचकर बताया, "बहुत बार नहीं। शायद हफ्ते में एक-दो बार।" फिर थोड़ा और सोचकर बोली, "हालांकि यह बहुत मज़ेदार बात है कि जब वह कोई शब्द एक बार पूछ लेती है, तो फिर भूलती नहीं।" हां, यह बात मज़ेदार है मगर आश्चर्यजनक नहीं है। जिन चीज़ों के बारे में, अपने व्यक्तिगत कारणों से, हम वास्तव में जानना चाहते हैं, उन्हें हम सीखकर भूलते नहीं हैं। परन्तु यदि वह हफ्ते में सिर्फ एक मर्तबा, या शायद चन्द मर्तबा किसी से कोई शब्द पूछती है, तो ये तो कोई दो सौ शब्द हुए जबकि वह तकरीबन डेढ़ हज़ार शब्द जानती है। तो उसने बाकी के शब्द कहां से सीखे? ज़ाहिर है कि इन्हें उसने अपने आप पता लगाया।

जॉन होल्ट: दुनिया के जाने माने शिक्षाविद; होल्ट काफी घुमक्कड़ प्रवृत्ति के इंसान थे। शिक्षा होल्ट का शौक था। उन्होंने अपने इस शौक को ही अपना पेशा बनाया।

1964 में उनकी पहली किताब 'हाउ चिल्ड्रन फेल' छपी। यह उनकी डायरी का एक अंश थी। इस डायरी में वे बच्चों के करतबों और हरकतों को दर्ज करते जाते थे। इस किताब ने शिक्षा जगत में तहलका मचा दिया।

प्रस्तुत अंश उनकी एक अन्य किताब 'हाउ चिल्ड्रन लर्न' से लिया गया है।

अनुवादक सुशील जोशी पर्यावरण एवं विज्ञान लेखन में स्वतंत्र रूप से सक्रिय हैं; वे एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से भी संबद्ध हैं।

प्रजनन एक उभयलिंगी जीव में

केंचुए में प्रजनन

स्निग्धा मित्रा

है तो केंचुआ उभयलिंगी जीव लेकिन प्रजनन के लिए यहां भी दो केंचुओं की ज़रूरत होती है।

यह जानकारी तो काफी आम है कि केंचुआ एक उभयलिंगी जीव है। उभयलिंगी जीव यानी कि ऐसा जीव जिसमें नर और मादा जननांग एक ही जीव में पाए जाते हैं। किसी भी उभयलिंगी जीव के बारे में एक स्वाभाविक सवाल उठता है कि वो प्रजनन कैसे करता होगा। आइए समझने की कोशिश करें कि केंचुए में प्रजनन की प्रक्रिया कैसे होती है।

केंचुए में इस प्रक्रिया को समझने के लिए उसके शरीर की बनावट के बारे में थोड़ा-सा जानना ही पड़ेगा। केंचुए को देखने से जो जानकारी आपके पास है उसमें ये बातें और जोड़ लीजिए – केंचुए का शरीर बहुत से छल्लेनुमा खंडों का बना हुआ होता है जिनकी संख्या भारतीय प्रजातियों में आमतौर पर 100 से 120 के बीच होती है। उसके शरीर में दो तरह की मांस पेशियां होती हैं – एक जिनसे वह अपने आप को लंबा या छोटा कर सकता है, और दूसरी जिनसे केंचुआ मोटा या पतला हो सकता है। इनका इस्तेमाल वह हलन-चलन के लिए करता है।

आइए देखते हैं कि इस उभयलिंगी जीव में जननांग कहां होते हैं। आगे से यानी कि मुंह की तरफ से गिनें तो पांचवें और नौवें खंडों के बीच के प्रत्येक जोड़ पर दो-दो थैलियां होती हैं जिनमें शुक्राणु रखे जा सकते हैं। यानी कि कुल मिलाकर चार जोड़ थैलियां। शुरुआत में ये थैलियां बिलकुल खाली होती हैं। केंचुए के अपने शुक्राणु कभी भी इन थैलियों में नहीं आते। तो सवाल उठेगा कि फिर इन्हें शुक्राणु थैलियां कहें ही क्यों? थोड़ा रुकिए

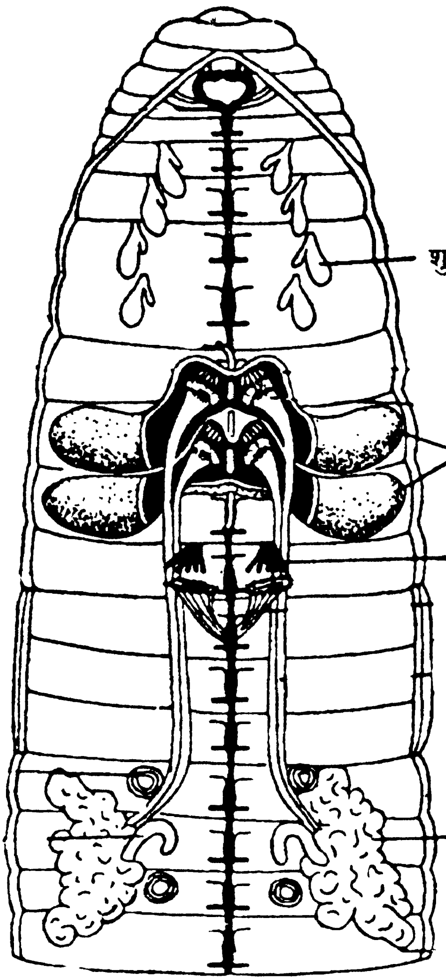

बावजूद इसमें भी पहले चरण में दो केंचुओं का मिलन आवश्यक है, उसके बिना प्रजनन नहीं हो सकता।

पहले चरण में दो केंचुए पास-पास आकर एक-दूसरे से सट जाते हैं। वे इस तरह से पास-पास आते हैं कि एक केंचुए का मुंह जिस तरफ होता है, दूसरे का मुंह उससे उल्टी दिशा में रहता है। एक के नर जननांग छिद्र दूसरे की शुक्राणु थैलियों से सट जाते हैं, और दूसरे के नर जननांग छिद्र पहले की शुक्राणु थैलियों से सट जाते हैं। इस अवस्था में एक केंचुए का नर जननांग दूसरे केंचुए की शुक्राणु थैलियों में शुक्राणु छोड़ता है। इसी तरह दूसरे केंचुए का नर जननांग पहले केंचुए की शुक्राणु थैलियों में शुक्राणु छोड़ता है। जैसे-

बात अपने आप स्पष्ट हो जाएगी।

थोड़ा आगे बढ़ें तो चौदहवें खंड पर अंडवाहिनी का मुंह खुलता है — एक छिद्र के रूप में।

और फिर सत्रहवें से उन्नीसवें खंडों पर केंचुए के नर जननांग से आने वाले दो-दो छिद्र होते हैं, यानी तीन जोड़ छिद्र।

केंचुए में प्रजनन की प्रक्रिया दो चरणों में होती है। उभयलिंगी होने के

जैसे केंचुए एक के ऊपर एक सरकते जाते हैं वैसे-वैसे एक केंचुए के शुक्राणु दूसरे की थैली में आ जाते हैं। ऐसा इसलिए ज़रूरी होता है क्योंकि शुक्राणु केवल 18वें खंड के छिद्रों में से निकलते हैं। इस तरह पहला चरण पूरा हो जाता है।

दूसरा चरण कहीं और ही शुरू होता है। केंचुए के मुंह से 14वें और 16वें खंड के बीच का हिस्सा कुछ फूला-फूला-सा होता है। यह हिस्सा लगभग एक सेंटी मीटर लंबा होता है। इसका रंग भी गहरा होता है और यह चमड़े जैसा दिखता है, इसलिए यह अलग ही नज़र आ जाता है। क्लाइटेलम कहलाने वाले इस हिस्से की ग्रंथियां एक लिसलिसा पदार्थ स्त्रावित करती हैं जिसे म्यूकस कहते हैं। इस लिसलिसे पदार्थ से उन तीन खंडो के चारों तरफ एक नलाकार थैलीनुमा रचना बन जाती है। इसे हम प्रजनन थैली कहेंगे। इस नाम का औचित्य भी आपको कुछ ही देर में समझ में आ जाएगा।

याद है न कि अंडवाहिनी के छिद्र कौन-से खंड पर खुलते हैं। चौदहवें खंड पर यानी कि प्रजनन थैली के ठीक नीचे। प्रजनन थैली जब पूरी तरह से बन जाती है तो केंचुआ अंडवाहिनी के ज़रिए उसमें अंडे छोड़ देता है। और फिर अपनी मांसपेशियों का इस्तेमाल करते हुए पीछे की तरफ सरकने लगता है जिससे प्रजनन थैली आगे की तरफ से बाहर निकलने लगती है। उसी तरह जैसे हम उंगली से अंगुठी निकालते हैं। अब आगे की प्रक्रिया तो आप समझ ही गए होंगे! जब यह प्रजनन थैली सरकते-सरकते पांचवें से नौवें खंडों पर पहुंचती है तो शुक्राणु थैलियों में संजो कर रखे हुए दूसरे केंचुए के शुक्राणु उसमें जा पहुंचते हैं।

इसी तरह सरकती हुई यह थैली केंचुए के मुंह के ऊपर से बाहर निकल जाती है। इलास्टिक होने की वजह से केंचुए पर से उतरते ही थैली के दोनों सिरे बंद हो जाते हैं। इस प्रजनन थैली को अक्सर 'ककून' कहा जाता है। ककून का रंग भूरा-सा होता है और लंबाई लगभग तीन मिली मीटर – गेहूं के दाने जैसा आकार, पर उससे काफी छोटा और कोने ज़्यादा नुकीले।

आप भी कोशिश कर सकते हैं ज़मीन में ऐसे ककून ढूंढने की। और अगर कहीं ककून हाथ लग जाए तो मिट्टी में सुरक्षित रख इंतज़ार कीजिए कि केंचुए के बच्चे कब निकलते हैं। इतना ज़रूर बता दें कि बेसब्री से काम नहीं चलेगा क्योंकि अगर अभी-अभी ही ककून उतारा है केंचुए ने तो बारह हफ्ते तक इंतज़ार करना पड़ सकता है।

स्निग्धा मित्राः एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

ओरिगेमी की किताब हिंदी में पहली बार

कागज़ को मोड़ कर विभिन्न आकार बनाने की कला है ओरिगेमी – न गोंद से चिपकाने की झंझट, न कैंची से काटने की।

ओरिगेमी में प्रारंभ कुछ आधारों से होता है। इस किताब में उनमें से एक 'पानी गेंद आधार' को नए-नए आकार देने की कोशिश की गई है।

पृष्ठ : 40+4 **मूल्य 20 रुपए**

राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट से भेजी जा सकती है। राशि में रजिस्टर्ड डाक खर्च के 13 रुपए और जोड़ें। कृपया ध्यान रखें कि ड्राफ्ट एकलव्य, भोपाल के नाम से बनवाएं।

एकलव्य, ई-1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016

वर्ष 4 : अंक 19 से 25

अंक : 19

आपने लिखा......	2	पर्यावरण क्या, क्या नहीं...	47
पौधों में श्वसन, जड़.....	7	ढाई चक्कर की गुत्थी.....	60
सवालीराम.....	15	एटीपी और मांसपेशियों का..	62
पावरझंडा 57 सालों में.....	22	साकार होती कल्पनाएं.....	73
पलकों का नज़ारा और चूहे...	29	वह आदमी जो चमत्कार कर.	79
बिजली के झटके.....	37	तौबा ये मतवाली चाल....	96

अंक : 20

आपने लिखा.....	2	फूलों से मज़ेदार प्रयोग.....	60
माइक्रो बायोलॉजी, मानो....	5	गुरु नानक का दोहा.....	63
अतिचालकता.....	11	सवालीराम.....	67
पराग कण का सफर.....	25	किताबें करती हैं बातें.....	74
नौसादर, पानी और.....	35	तरीकों की खोज इतिहास.....	79
वह जादुई स्कूल.....	41	ज़रा सिर तो खुजलाइए.....	90
नील्स बोहर एक मानवतावादी.....	51	खेती करती चींटियां.....	92

अंक : 21

आपने लिखा.....	2	एक अजूबा पत्ती खट्टूम्बरा की..	56
कहां बल कहां ऊर्जा.....	9	चांद के क्रेटर.....	59
छोटा होता कद और शरीर...	17	एटीपी एक सेतु.....	69
मैं शिक्षिका क्यों बनी.....	27	बच्चे सीखते हैं समझते हैं....	75
ध्वनि कुछ कारनामे.....	33	ज़रा सिर तो खुजलाइए.....	79
सवालीराम.....	43	ये छोटे-छोटे पुस्तकालय.....	81
एक पादरी जिसने आनुवंशिकता.	.47	लुढ़काए जाओ...गोबर.....	91

अंक : 22-23

आपने लिखा. 4
सिकाडा का मधुर संगीत. 9
आवेश, चुंबक और कूलंब का. 16
हिरोशिमा से पोखरण तक. 23
मूल संपन्न समाज. 32
मॉनसून - एक अबूझ पहेली. 41
बहुस्तरीय शिक्षण - स्थितियों. 55
चंद्रमा -1. 66
तारों का वर्णक्रम और मेघनाथ. . .70
आर्यभट, महान गणितज्ञ. . . . 77
समुद्र सतह में उतार-चढ़ाव. . 91
ज़रा सिर तो खुजलाइए. . . . 102
जादुई तालाब की पहेली. . . . 104
ये लाजवाब बच्चे. 115
घर पर 121
बच्चे कैसे सीखते हैं. 135

अंक : 24-25

आपने लिखा. 4
चंद्रमा - 1 11
पात्रता और अभाव. 15
क्या हमारे विश्वास न्यूटन को. . . 28
कायांतरण. 38
सिकाडा किलर्स. 50
आर्यभटीय. 53
पानी में नाचता नमक का घोल. . . .69
ज़रा सिर तो खुजलाइए. 73
दो संख्याएं, एक रेखा के ऊपर. 74
धरती का कांपना. 81
ऊर्जा ही है सब कुछ. 93
जादुई तालाब - एक और हल 101
बच्चों का मौलिक लेखन. 104
अनारको यमत लोक मे (कहानी) 111
बच्चे कैसे सीखते हैं. . . . 125
केंचुए में प्रजनन. 135
इंडेक्स. 139

इंडेक्स

इसे देखने का तरीका : सात अंकों में प्रकाशित सामग्री का विषय आधारित वर्गीकरण किया गया है। कई लेखों में एक से ज़्यादा मुद्दे शामिल हैं, इसलिए वे लेख एक से ज़्यादा स्थानों पर रखे गए हैं। लेख के शीर्षक और लेखक के नाम के साथ पहले बोल्ड में उस अंक का नंबर है उसके बाद उस अंक का पृष्ठ क्रमांक दिया गया है।

भौतिकी (Physics)

बादल ऊपर क्यों लटका	सवालीराम	19.15
पलकों का नज़ारा और चूहे	फिलिप मॉरिसन	19.29
बिजली के झटके	अजय शर्मा	19.37
अतिचालकता	अजय शर्मा	20.11
नील्स बोहर, एक मानवतावादी चेहरा	–	20.51
तीखी होती सीटी	सवालीराम	20.90
कहां बल, कहां उर्जा	एस. बी. वेलणकर	21.9
ध्वनि, कुछ कारनामे	–	21.33
क्यों बना माचिस से टेलिफोन	सवालीराम	21.43
आवेश, चुंबक और कूलंब का बल	एस. बी. वेलणकर	22-23.16
चंद्रमा -1	अरविंद गुप्ते	22-23.66
तारों का वर्णक्रम और मेघनाथ साहा	कमल दत्ता	22-23.70
क्या हमारे विश्वास न्यूटन को न मानें	अनीता रामपाल	24-25.28
आर्यभटीय	गुणाकर मुळे	24-25.53
ऊर्जा ही है सब कुछ	एस. बी. वेलणकर	24-25.93

रसायन शास्त्र (Chemistry)

एटीपी और मांसपेशियों का सिकुड़ना	सुशील जोशी	19.62
नौसादर, पानी और घुलनशीलता	शशि सक्सेना	20.35
फूलों से मज़ेदार प्रयोग	किशोर पंवार	20.60
एटीपी एक सेतु	सुशील जोशी	21.69

प्राणी शास्त्र (Zoology)

पलकों का नज़ारा और चूहे	फिलिप मॉरिसन	19.29
एटीपी और मांसपेशियों का सिकुड़ना	सुशील जोशी	19.62
तौबा ये मतवाली चाल	–	19.96
माइक्रो बायोलॉजी मानो बर्ड वाचिंग	मिलिंद वाटवे	20.5
गंध का अहसास	सवालीराम	20.67
खेती करती चींटियां	–	20.92
छोटा होता कद	जे. ए. संतोष	21.17
लुढ़काए जाओ. . . गोबर का गोला	–	21.91
सिकाडा का मधुर संगीत	नीरज जैन	22-23.9

कायातरण	सुशील जोशी	24-25.38
सिकाडा किलर्स	किशोर पंवार	24-25.50
केंचुए में प्रजनन	स्निग्धा मित्रा	24-25.135

वनस्पति शास्त्र (Botany)

पौधों में श्वसन, जड़ों में लेंटिसेल	किशोर पंवार	19.7
माइक्रो बायोलॉजी मानो बर्डवॉचिंग	मिलिंद वाटवे	20.5
पराग कण का सफर	भोलेश्वर, स्निग्धा	20.25
फूलों से मज़ेदार प्रयोग	किशोर पंवार	20.60
एक पादरी जिसने आनुवंशिकता के नियम	–	21.47
एक अजूबा पत्ती खट्टूम्बरा की	किशोर पंवार	21.56

प्राणी व्यवहार (Animal Behaviour)

तौबा ये मतवाली चाल		19.96
खेती करती चींटियां		20.92
लुढ़काए जाओ गोबर का गोला		21.91
सिकाडा किलर्स	किशोर पंवार	24-25.50

सूक्ष्म जैविकी (Micro Biology)

पलकों का नज़ारा और चूहे	फिलिप मॉरिसन	19.29
माइक्रो बायोलॉजी मानो बर्ड वॉचिंग	मिलिंद वाटवे	20.5

गणित (Maths)

ज़रा सिर तो खुजलाइए		21.79
आर्यभट महान गणितज्ञ	गुणाकर मुळे	22-23.77
ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	22-23.102
जादुई तालाब की पहेली	विजय शंकर वर्मा	22-23.104
आर्यभटीय	गुणाकर मुळे	24-25.53
दो संख्याएं, एक रेखा के ऊपर एक नीचे	छाया दुबे	24-25.74
जादुई तालाब – एक और हल	प्रमोद मैथिल	24-25.101

इतिहास (History)

गुरु नानक का दोहा औरंगज़ेब	सी. एन. सुब्रह्मण्यम	20.63
तरीकों की खोज इतिहास पढ़ाने के	लेव तोलस्तोय	20.79
मूल संपन्न समाज	मार्शल साहलिन्स	22-23.32

भूगोल / भूविज्ञान (Geography/Geology)

पर्यावरण क्या, क्या नहीं	रश्मि पालीवाल	19.47
चांद के क्रेटर	माधव केलकर	21.59
मॉनसून एक अबूझ पहेली	–	22-23.41
समुद्र सतह में उतार-चढ़ाव	माधव केलकर	22-23.91
धरती का कांपना	माधव केलकर	24-25.81

अर्थशास्त्र (Economics)

पात्रता और अभाव	अमर्त्य सेन	24-25.15

जीवनियां

नील्स बोहर, एक मानवतावादी	कमल दत्ता	20.51
एक पादरी जिसने आनुवंशिकता के नियम खोजे		21.47
आर्यभट महान गणितज्ञ	गुणाकर मुळे	22-23.77

कुछ तरीके पढ़ाने के

पर्यावरण क्या, क्या नहीं	रश्मि पालीवाल	19.47
साकार होती कल्पनाएं	कमलेश चंद्र जोशी	19.73
किताबें करती हैं बातें	कमलेश चंद्र जोशी	20.74
तरीकों की खोज इतिहास पढ़ाने के	लेव तोल्सतोय	20.79
मिश्राजी की कक्षाएं	किशोर पंवार	21.26
ध्वनि, कुछ कारनामे	–	21.33
बच्चे सीखते हैं समझते हैं	कमलेश चंद्र जोशी	21.75
बहुस्तरीय शिक्षण, स्थितियों से. . . .	मुकेश मालवीय	22-23.55
दो संख्याएं, एक रेखा के ऊपर एक नीचे	छाया दुबे	24-25.74

बच्चों के साथ अनुभव/ अपने स्कूल के अनुभव

पर्यावरण क्या, क्या नहीं	रश्मि पालीवाल	19.47
साकार होती कल्पनाएं	कमलेश चंद्र जोशी	19.73
वह जादुई स्कूल	अभय बंग	20.41
किताबें करती हैं बातें	कमलेश चंद्र जोशी	20.74
मैं शिक्षिका क्यों बनी	गंगा गुप्ता	21.27
बहुस्तरीय शिक्षण, स्थितियों से.	मुकेश मालवीय	22-23.55
ये लाजवाब बच्चे	कमलेश चंद्र जोशी	22-23.115
बच्चों का मौलिक लेखन	कमलेश चंद्र जोशी	24-25.104

बच्चे कैसे सीखते हैं	जॉन होल्ट	24-25.125

पुस्तक अंश

पलकों का नज़ारा और चूहे	फिलिप मॉरिसन	19.29
तरीकों की खोज इतिहास पढ़ाने के	लेव तोल्सताय	20.79
मूल संपन्न समाज	मार्शल साहलिन्स	22-23.32
बच्चे कैसे सीखते हैं	जॉन होल्ट	22-23.135
बच्चे कैसे सीखते हैं	जॉन होल्ट	24-25.125

प्रयोग, गतिविधि, मॉडल

फूलों से मज़ेदार प्रयोग	किशोर पंवार	20.60
ध्वनि कुछ कारनामे	—	21.33
पानी में नाचता नमक का घोल	ए. दास	24-25.69

सर्वे रिपोर्ट

पावरझंडा, 57 सालों में	मुकेश मालवीय	19.22
क्या हमारे विश्वास न्यूटन को न मानें	अनीता रामपाल	24-25.28
दो संख्याएं, एक रेखा के ऊपर एक नीचे	छाया दुबे	24-25.74

कहानी

वह आदमी जो चमत्कार कर सकता था	एच. जी. वेल्स	19.79
घर पर	एंटोन चेखव	22-23.121
अनारको यमत लोक में	सत्यु	24-25.111

सस्मरण

वह जादुई स्कूल	अभय बंग	20.41
मिश्राजी की कक्षाएं	किशोर पंवार	21.26

अन्य

ढाई चक्कर की गुत्थी	ज़रा सिर तो खुजलाइए	19.60
ये छोटे-छोटे पुस्तकालय	जॉन होल्ट	21.81
हिरोशिमा से पोखरण तक	ज़्यों ड्रेंज़	22-23.23
ज़रा सिर तो खुजलाइए	—	24-25.73
इंडेक्स	—	24-25.139

उड़ने वाला सांप

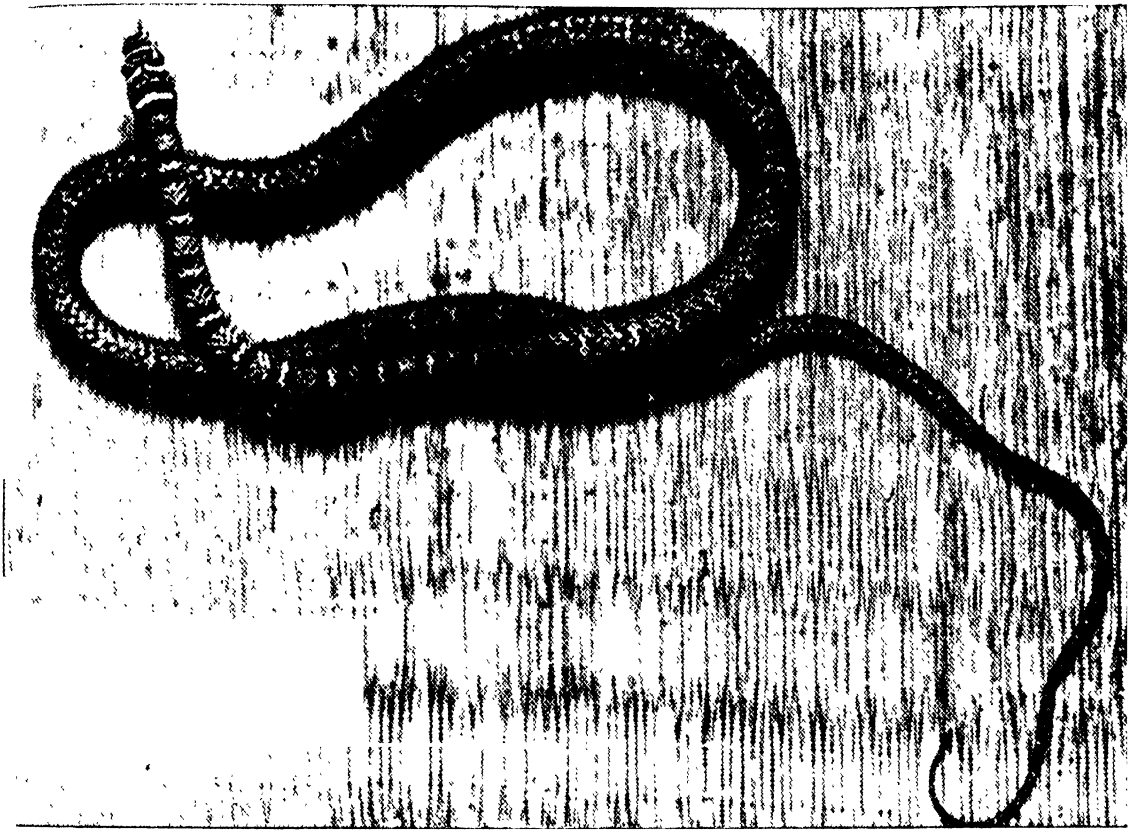

हमारी लोककथाओं में उड़ने वाले सांप के न जाने कितने किस्से प्रचलित हैं। और यह भी बताया जाता है न कि कब निकलते हैं सांप के पंख. . 'जब वो सौ साल का हो जाता है'. . .
लेकिन हकीकत में जो उड़ने वाला सांप होता है उसके तो पंख होते ही नहीं हैं। तो फिर यह उड़ता कैसे है? सवाल उठा न आपके दिमाग में तुरन्त। यह अपनी पसलियों को खींचता है जिससे इसका शरीर थोड़ा चपटा-सा हो जाता है और फिर यह एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूद जाता है, हवा में तैरते हुए। अपने भारत में यह दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पूर्वी इलाकों में मिलता है। जिसने भी इसे देखा है बताते हैं कि यह बड़ा खूबसूरत होता है। इसके जीवनचक्र के बारे में अभी बहुत जानकारी नहीं है। हां यह मालूम है कि मादा एक बार में 6 से 12 तक अंडे देती है। यह छिपकली, मेंढक और चिड़िया आदि भी खाता है और घने जंगलों में रहना पसंद करता है। इसकी औसत लंबाई एक मीटर होती है।

12750

एकलव्य की ओर से राजेश खिंदरी द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016 से प्रकाशित। संपादक - राजेश खिंदरी